**ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यं अंशो जीवो हि नापरः**

**अखण्ड भूमण्डलाचार्य जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठ, श्रीनाथद्वारा**

# पुष्टिमार्ग

## त्रैमासिक पत्रिका

*जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर*
*आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित*
*श्री १०८ श्रीराकेशजी ( श्रीइन्द्रदमनजी )*
*महाराजश्री की आज्ञा से–*

प्रकाशक

***अजय कुमार शुक्ला***

***मुख्य निष्पादन अधिकारी***

*मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा (राज.)*

*30 सितम्बर 10*
*( वि.सं. २०६७ )*

*दयाशंकर पालीवाल*
*सम्पादक*

*जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित श्री १०८ श्रीराकेशजी ( श्रीइन्द्रदमनजी ) महाराजश्री की आज्ञा से सम्पादक दयाशंकर पालीवाल द्वारा सम्पादित एवं स्वत्वाधिकारी श्रीमन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के मुख्य निष्पादन अधिकारी द्वारा प्रकाशित तथा* ***श्रीसुदर्शन यन्त्रालय*** *मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा द्वारा मुद्रित।*

# संरक्षक–मण्डल

अध्यक्ष

**गो. ति. श्री १०८ श्रीराकेशजी ( श्रीइन्द्रदमनजी ) महाराजश्री**

**चि. गो. श्रीभूपेशकुमारजी ( श्रीविशाल बावा )**

## प्रकाशकः–

**अजय कुमार शुक्ला**

मुख्य निष्पादन अधिकारी मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा

**दयाशंकर पालीवाल**

सम्पादक

**जयदेव गुर्जर गौड़**
परामर्शदाता

**डा. देवर्षि कलानाथ शास्त्री**
परामर्शदाता

न्यौछावर १५/– अंक– 3 प्रति १०००

नाथद्वारा मन्दिर मण्डल के मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा द्वारा प्रकाशित एवं श्रीसुदर्शन यन्त्रालय मन्दिर मण्डल द्वारा मुद्रित

**R.N.I.No. RAJHIN-/1999-3432**

प्राप्ति स्थान
श्रीगोवर्धन पुस्तकालय, धोली पटिया श्रीनाथजी मन्दिर
नाथद्वारा (राजस्थान) 313301


कृपया सदस्यता शुल्क वार्षिक–60), पांच वर्षिय–300) और आजीवन–800) भिजाकर शीघ्र सदस्य बनें और अन्य लोगों को भी बनाने का पवित्र कार्य करें। –सम्पादक

''जय श्रीकृष्ण''

## सम्पादकीय–

शाश्वत, अस्तित्वमय, त्रिकाल सत्य और आनन्द है वही कृष्ण है, परब्रह्म है। 'सत्' और 'आनन्द' के सन्नियोग से 'चित्त' तो उद्घाटित हो ही जाता है और बन जाता है–सच्चिदानन्द। पूर्णानन्द कहकर जिसे ऋषियों ने गाया है, जो सभी कारणों का कारण, अनादि, अनन्त, अछेद्य, अभेद्य है; जो साक्षात् परब्रह्म है; वही श्रीकृष्ण पुष्टिमार्ग में सेव्य है। पूर्ण पूरूषोत्तम परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं, श्रीनाथजी के स्वरूप में भूतल पर श्री नाथद्वारा में विराजते हैं। लीला पुरूषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण 'सर्वभूत सुहृद' है। वे वसुदेव–देवकी और नन्द यशोदा के परम सुख स्वरूप सुपुत्र है; व्रज बालकों, सुदामा जैसे निर्धनों तथा अर्जुन–उद्धवादि वीरों विद्वानों के सखा–मित्र है; गौओं के अनन्य सेवक, पशु पक्षियों के बंधु; असुरों के शत्रु; ज्ञानियों के ब्रह्म, योगियों के परमात्मा, भक्तों के भगवान्, राजनीतिज्ञों में निपुण राजनीति विशारद, शूरवीरों में अतुल पराक्रमी महावीर, शरणागतों के परम रक्षक, शिष्यों के परम ज्ञान दाता गुरू और सन्मार्ग दर्शक, द्वारका की ऐश्वर्यमयी महिषियों के पूज्य पति, प्रेमियों के परम प्रेमास्पद और गोपाङ्गनाओं के मधुरतम प्राण वल्लभ हैं।

प्रस्तुत अंक रसिकेश्वर श्रीकृष्ण के परमानन्द रस का रसास्वादन कराता है। चि. गो. श्री विशाल बावा सा. की आज्ञा से श्री दामोदर–पुष्टि–भक्ति–मार्गीय पाठशाला से सुलभ कराये गए आलेख में समझाया गया है कि ग्यारह इन्द्रियों के अधिष्ठाता मुख्य अधिकारी गोप यदि परोपकार परायण हो जाते हैं तो सब ही सिद्ध हो जाता है और इन्द्रियधारियों की इन्द्रियां तब फलवती होती है जब वे प्रभु श्रीकृष्ण की सेवा में संलग्न हो जाती है। रसाचार्य डा. रामप्रसाद शर्मा ने रसोपासना के मूल आधार 'युगल का नित्य विहार' एवं 'उभय भावात्मक रसोपासना' का रसमय वर्णण कर रसिक पाठकों को रस–सिक्त कर दिया है। प्रकाण्ड विद्वान श्री गदाधर भट्ट का ''पुष्टिमार्ग एवं उपास्यदेव भगवान् श्रीनाथजी'' आलेख जिज्ञासु वैष्णवों को समग्र दृष्टि से संतृप्त करता है। सहज, सरल, समर्पित वैष्णव श्री श्याम सुन्दर गिरनारा का आलेख श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर नन्द के घर आनन्द के साथ भगवच्चरणारविन्द में समर्पण संकल्प की प्रेरणा देता है। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर आयोजित अभिनव स्पर्द्धाओं में आमजन का जुड़ाव और नवीन स्पर्द्धा ''गोपी–नृत्य'' की अलौकिकता का सत्य चित्रण किया है मुझ अकिंचन दयाशंकर पालीवाल ने।

पूर्व मुख्य निष्पादन अधिकारी मन्दिर मण्डल नाथद्वारा एवं विद्वान श्री कैलाश बिहारी वाजपेयी का आलेख गागर में सागर के रूप में ''श्रीनाथजी एवं प्राकट्य, श्रीनाथधाम और यहां की जन्माष्टमी'' सम्बन्धी समस्त जानकारियां अपने में संजोये हुए है। परम भगवदीय वैष्णव श्री हरिनारायण नीमा ने वार्ता–प्रसंग से प्रभु कृपा से पतित के पवित्र बन जाने का उल्लेख किया है। श्रीनाथजी मन्दिर के प्रधान उपाध्याय श्री ब्रजभूषण भट्ट ने अगले क्रम में जनन–आशौच की प्रामाणिक सारिणी सृजित की है। पंडित श्री विष्णुदत्त पुरोहित ने अपने आलेख ''नारदीय भक्ति सूत्र'' में भक्तों के गमन मार्ग में लौकिक व वैदिक कर्मो की आवश्यकता का औचित्य बताया है ताकि भक्त के पतित होने की आशंका न रहे। विधि, विज्ञान और पुष्टिमार्ग मर्मज्ञ श्री गोपालदास व. नीमा का आलेख सरस है। प्रो. श्री ललित शंकर शर्मा ने अपने आलेख में श्री कृष्ण भगवान् को प्रेम से पहचान कर सर्वस्व मानना विशुद्ध भक्ति का समुज्ज्वल स्वरूप बताया है। शिक्षा एवं विज्ञान के मनीषी और भावुक वैष्णव श्री प्यारेलाल पारिख ने अपने आलेख में श्रीगुसांईजी के अपने पिताश्री के आज्ञाकारी पुत्र होने का भावपूर्ण उल्लेख किया है। सेवाभावी, सरल स्वभावी, युवा भावुक भक्त श्री रविराज ईश्वरचन्द्र सनाढ्य ने पदों सहित दानलीला का सरस वर्णण किया है।

रसिकों के परमाराध्य रसरूप परब्रह्म परमानन्द भगवान् श्रीनाथजी का अनुग्रह, पूज्यपाद ति. गो. श्रीराकेशजी महाराजश्री की कृपा, चि. गो. श्री विशाल बावा सा. का सम्यक् मार्गदर्शन, मुख्य निष्पादन अधिकारी महोदय की सदाशयता, परामर्शदाताओं का परामर्श और विद्वान लेखकों का लेखन मेरा सम्बल रहा है। पत्रिका का स्तर उत्तरोत्तर उत्तम बनता रहे और विद्वज्जन तथा पाठकों का सतत् सहयोग मिलता रहे यही रसिकेश्वर, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्द भगवान् श्रीनाथजी से विनम्र विनती है।

दयाशंकर पालीवाल (पूर्व प्राचार्य, शुद्धाद्वैत भूषण)
संपादक

# अनुक्रमणिका


| विषय | | प्रस्तोता | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| * | सम्पादकीय | दयाशंकर पालीवाल | |
| 1. | श्रीमद् भागवत–दशम स्कन्ध (सुबोधिनी) १६वें अध्याय का श्लोक | चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. की आज्ञा से श्री दामोदर–पुष्टि–भक्ति–मार्गीय पाठशाला से सुलभ आलेख | 6 |
| 2. | रसोपासना का मूलाधार 'युगल का नित्य विहार' तथा उभय भावात्मक रसोपासना' प्रसंग | डॉ. श्री रामप्रसाद शर्मा | 9 |
| 3. | पुष्टिमार्ग एवं उपास्यदेव भगवान् श्रीनाथजी | श्री गदाधर भट्ट | 15 |
| 4. | आज नन्द के आनन्द | श्री श्याम सुन्दर गिरनारा | 19 |
| 5. | श्रीनाथधाम नाथद्वारा एवं वहां की जन्माष्टमी | श्री कैलाश बिहारी वाजपेयी | 21 |
| 6. | लौकिक गोपी–नृत्य–स्पर्द्धा में अलौकिक महारास का अहसास | श्री दयाशंकर पालीवाल | 23 |
| 7. | महाप्रभु गिरिधर प्रकटे, पुष्टिमार्ग रस प्रकट किये | श्री हरिनारायण नीमा | 25 |
| 8. | जनन–आशौच (पिण्डरू) सारिणी | श्री ब्रजभूषण भट्ट | 27 |
| 9. | नारदीय भक्ति सूत्र | पं. श्री विष्णुदत्त पुरोहित | 30 |
| 10. | आखिर कैसे मनावे राधा मान से कृष्ण को? | श्री गोपालदास व. नीमा | 34 |
| 11. | कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् | प्रो. श्री ललित शंकर शर्मा | 35 |
| 12. | अद्वितीय पिता–पुत्र गुरूचरण | श्री प्यारेलाल पारिख | 36 |
| 13. | दानलीला का महत्व | श्री रविराज ईश्वरचन्द्र सनाढ्य | 40 |
| 14. | सदस्यता फार्म (हिन्दी) | मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा | 43 |
| 15. | सदस्यता फार्म (अंग्रेजी) | मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा | 44 |


**पुष्टिमार्गीय विद्वज्जन से प्रामाणिक आलेख सादर आमन्त्रित है–**

।। श्री गोवर्धननाथो विजयते ।।     ।। श्री नवनीतप्रिय विजयते ।।

# श्रीमद्भागवत–दशमस्कन्ध (सुबोधिनी) १६वें अध्याय का श्लोक

–चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. की आज्ञा से श्री दामोदर–पुष्टि–भक्ति–मार्गीय पाठशाला से सुलभ आलेख

श्लोक–हे कृष्ण स्तोक हे अंसो श्रीदामन् सुबलार्जुन।
विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरुथप।।

श्लोकार्थ–हे कृष्ण, स्तोक, हे अंशु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, हे विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरुथप मित्रों।।

**व्याख्यार्थ**– यहाँ ग्यारह मुख्य अधिकारी गोप ग्यारह इन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं। यदि वे परोपकार परायण हो जाते हैं, तो सब ही सिद्ध हो जाता है। इसीलिए– 'हे कृष्ण'– इस श्लोक से उन्हें सम्बोधन करते हुए कहते हैं।

**हे कृष्ण**! भगवान् का नाम करण हुआ, तब किन्ही और गोपियों ने भी अपने पुत्रों का नाम यही रखा था। स्तोक दूसरा, तीसरा अंसु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरुथप। वरुथप मन का अधिष्ठाता है। जो जिसके पास हो, वही उसका अधिष्ठाता है। **कृष्ण वाणी का, स्तोक रस का,** अधिष्ठाता है। वाणी और रस दोनों एक स्थान पर रहते हैं इससे दोनों– कृष्ण, स्तोक– का साथ ही सम्बोधन है, और फिर औरों का भिन्न भिन्न सम्बोधन किया है। अंसु घृणा का अधिष्ठाता है। **श्रीदामा नेत्र का, सुबल भुजाओं का, अर्जुन कानों का, विशाल त्वचा का, ऋषभ पैरों का** और बाकी रहा तेजस्वी पचाने का कार्य करने वाला होने से, पायु का अधिष्ठाता, देवप्रस्थ उपस्थ का अधिष्ठाता है, इन सब का भगवान् के साथ ठीक व्यवहार होना एक बड़े भारी पर्व का सिद्ध होना है। इस बात का– उनको सम्बोधन करके– निरुपण किया है।

**लेख– 'हे कृष्ण'** – की व्याख्या में 'इन्द्रियाधिष्ठातृ रुपाः'– जिन के रुपों में इन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं वे। 'पाकज्ञापकत्वात्' अश्रु आदि पायु इन्द्रियों का कार्य है। उनके द्वारा अन्तःस्वेद और पाक होता है तेज से ही चाँवल आदि का पाक होता हैं– यह भाव है।

**योजना**– हे कृष्ण स्तोक– की व्याख्या में– 'अत्रैकादश मुख्याधिकारिणों गोपाः'– कृष्ण नाम वाले गोप से प्रारम्भ करके वरुथप नाम के गोप तक एकादश हैं। 'इन्द्रियाधिष्ठात्–रुपाः'– जिन भक्तों का निरोध कराना है उनकी एकादश इन्द्रियों के अधिष्ठाता ये गोप हैं। सारे वैकुण्ठ को पृथ्वी पर उतार लाए कृष्णोपनिषत् के कथानुसार कृष्णावतार का सारा परिकर वैकुण्ठवासी है इस कारण से ये सखा भी वैकुण्ठवासी हैं और व्रज में जिन भक्तों का निरोध कराना हैं, उनकी एकादश इन्द्रियों के अधिष्ठाता (रुप से) भगवान् के साथ ही यहाँ अवतरित हुए हैं– ऐसा समझना चाहिए। व्रजवासी सब अलौकिक हैं इसलिए उनकी इन्द्रियों के अधिष्ठाताओं का भी प्रपञ्च से अतीत वैकुण्ठ का परिकर रुप होना उचित ही हैं।

पुष्टि भक्ति का फल तो सेवा ही है अथवा सेवा का फल तो सेवा ही है, पुष्टि भक्ति में साधन ही फल हैं और फल ही साधन हैं अर्थात् साधनरुपी भगवत् सेवा का फल, फलात्मक भगवत् सेवा ही हैं। पुष्टि भक्ति सम्प्रदाय में भगवत्सेवा से उत्तम और कोई फल है ही नहीं, अगर किसी को भगवत् सेवा से किसी और फल की कामना है तो वह पुष्टि भक्त ही नहीं है। श्री आचार्य चरण श्री वल्लभ पुष्टिभक्ति मार्ग का गुरु गोपियों को बता रहे हैं "गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः" (सन्यास निर्णयः ८) पुष्टिभक्ति में फल क्या है यह तो पुष्टि–भक्ति–मार्गीय गुरु ही (गोपी ही) बता सकते हैं। वास्तव में पुष्टि–भक्ति–मार्गीय भक्त का अन्तिम फल क्या है इसका वर्णन विशेष रुप से श्री महाप्रभुजी ने सेवा फल ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन किया है। सेवा का फल क्या है, सेवा में साधक क्या है और भगवत् सेवा में बाधक क्या है? किन्तु श्री महाप्रभुजी जिन्हें गुरु बता रहे हैं उन गोपियों का क्या मन्तव्य हैं, फल के विषय में, इसे तो वेणुगीत की कारिका में श्री आचार्य चरण समझा रहे हैं कि गोपियों के लिए मोक्ष सुख तो अत्यंत तुच्छ है भगवत् सेवा के आगे, हमारी समस्त इन्द्रियाँ भगवत् सेवा में लगी रहें और हम

समस्त इन्द्रियों से भगवत् स्वरुपानन्द का अनुभव करते रहें यही सबसे बड़ा सेवा का फल है। शुद्ध पुष्टि भक्ति के साक्षात् स्वरुप गोपीजन परस्पर चर्चा करते हुए कहती हैं –

**भगवता सह संलापो दर्शनं मिलितस्य च।।**

**एवं मोक्षोपि इन्द्रियादि युक्तानां सर्वथा न हि।। (सुबोधिनी कारिका)**

गोपियाँ कहती हैं कि हमारी समस्त इन्द्रियाँ (एकादश इन्द्रियाँ) भगवत् सेवा करती रहें– (क्रम से समझे तो) १) हाथ से प्रभु की सेवा करना या आश्लेष (आलिंगन) करना।२) प्रभु के दर्शन करना यह नेत्र इन्द्रिय का फल है। ३) अपनी त्वचात्वक इन्द्रिय से प्रभु का स्पर्श करना। ४) अपनी रसना इन्द्रिय से प्रभु के अधरामृत का पान करना। ५) श्री कृष्ण के साथ वार्तालाप करना वाक् इन्द्रिय के द्वारा एवं ६) गुप्त इन्द्रिय द्वारा प्रभु के साथ भोग करना (भोगो गुह्य कार्यं, पुरुषाणां तु सेवोपभोगिपुत्रादि उत्पादन द्वारा तद् उपयोगः)। अर्थात् स्त्रियों की गुप्तेंन्द्रिय का साक्षात् भोग बताया किन्तु पुरुषों की गुप्त इन्द्रिय का उपयोग यह है कि उस इन्द्रिय के द्वारा भगवत् सेवापयोगी पुत्रादि की उत्पत्ति करना (श्री निर्भयराम भट्ट कृत कारिकार्थः)। ७) गुप्त इन्द्रिय के पश्चात् पायु इन्द्रिय का भी विनियोग किस प्रकार भगवत् सेवा में है उसका वर्णन गोपियाँ करती हैं कि प्रभु की लीला में या गुणगान में रोमान्चित होना यह पायु (गुदा) इन्द्रिय का विनियोग है तथा और समस्त इन्द्रियों का तो भगवत् सेवा में उपयोग स्पष्ट हैं जैसे–प्रभु द्वारा वेणु नाद का श्रवण श्रवणेन्द्रिय (कान) से, श्रीकृष्ण के अलौकिक श्रीअंग की गन्ध को सूंघना यह घ्राण (नाक) इन्द्रिय का फल है (या उपयोग है), सदा उनकी तरफ ही दौड़ना यह पाद इन्द्रिय (पैर) का फल है एवं सदासर्वदा मन से उनका भावन करते रहना (उनकी ही भावना करते रहना) यह मन इन्द्रिय का फल है। वास्तव में इन्द्रिय वालों के लिए तो यह फल है। मोक्ष भी इसके सामने कुछ भी नही। जिस प्रकार अन्धकार में स्थिति नेत्रों का फल नहीं है, अर्थात् नेत्रों का सफल होना तब होता है, जब प्रकाश हो जिसमें सर्व प्रकार की कृति की जा सके अन्यथा (अन्धकार होना) नेत्रों की निष्फलता है। इसी प्रकार इन्द्रियधारियों की इन्द्रियाँ तब फलवती होती हैं जब वे प्रभु श्रीकृष्ण की सेवा करें।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

# रसोपासना का मूलाधार 'युगल का नित्य विहार' तथा 'उभय–भावात्मक रसोपासना प्रसंग

–डा. श्री रामप्रसाद शर्मा, किशनगढ़

रूपध्यान– करारविन्दे पदारविन्दे मुखारविन्दे विनिवेशयन्तनम। वटस्य पत्रस्य पुटे शयनं बालमुकुन्दं मनसा स्मरामि।

मनोरथ– नयन अन्तर आव तू, पलक ढांपि तोहि लेहुँ। ना मैं देखूं और को ना तोहि देखन देहुँ।।

रसाचार्यों ने अनादि वैदिक रसो वै सः श्रुति द्वारा प्रतिपादित रसरूपा–परमानन्द स्वरूप परब्रह्म–पुरूषोत्तम परमेश्वर के पूर्णावतार सच्चिदानंद सर्वेश्वर श्रीकृष्ण और उन्हीं के अनुरूप उनकी परमाह्लादिनी शक्ति श्री राधाजी के दाम्पत्य परक नित्यबिहार की अनन्त–अखंड एकानुभूति को ही रसिकों का परमलक्ष्य माना है। युगल का यह नित्यबिहार, ब्रजविहार और वृन्दावन विहार के भेद से अनवरत अनुभूति गम्य होता है। इन उभयात्मक नित्य विहार के प्रसंगों में युगल विलास के परमानन्द से क्रमशः ब्रजविहार रस और निकुंज बिहार रस साधित होता है। ब्रजबिहार रस में गोपीभाव तथा निकुंज रस में सखी–सहचरी भाव से युगल की सेवा का दुर्लभ और अंतरंग सेवा का विधान है। दम्पति श्री राधाकृष्ण के नित्यनूतन अनन्तानन्त रूप गुणालंकृत–परमसौंदर्य–माधुर्य–लावण्य–सौशिल्य से संपूरित रूपध्यान के आधार पर, युगलबिहारी बिहारिणीजू के नित्य नूतन वयस में, उनके ही रसरूप नित्यनूतन लीलाधाम व्रजवृन्दावन में, उन्हीं के रसरूप लीलापरिकरों के नित्यनूतन उत्साह उमंग और प्रतिपल नव नव भावावेश में, उनके नित्यनूतन लीला रस प्रसंगों का, अष्टकालिक विविध ऋतुपरक–उत्सव–प्रासांगिक अहर्निश स्मरण चिन्तन–मनन–कीर्तन करते हुए कहीं गोपीभाव से तल्लीन ब्रजबिहारी का, तो कहीं सखी भाव से निकुंजबिहारी का, दर्शनानन्द–परमानन्द पाना ही रसोपासना के साधकों का परम रहस्यात्मक लक्ष्य है।

युगलतत्व श्रीराधाकृष्ण की लीलाएँ ब्रजबिहार और वृन्दावन बिहार उभय नामात्मक मानी गई हैं जिनसे परिपुष्ट क्रमशः ब्रजरस तथा निकुंज रस के सभी विधान लगभग समान हैं। रसराज शृंगार ही दोनों का मूलाधार रस है, ब्रजलीलाओं में शृंगार के संयोग वियोग परक पक्ष मान्य हैं जबकि निकुंज रस में प्रतिपल संयोग का अनवरत अखंड विधान है, यहाँ प्रियाप्रियतम युगल दम्पति श्री राधाकृष्ण का अनवरत सहचरण,

निकुंज–केलि रमण की साध्य है। जलक्रीड़ा–दीपोत्सव, शरद–चन्द्रोत्सव, होरी फाग–वसन्त–हिंडोरा, ऋतुपरक विविध पर्व–त्यौहार–उत्सव लीलापरक प्रसंग, नखशिख, शृंगार के विषय, रास–महारास, वनविहार आदि सभी प्रसंगों की योजनाएँ दोनों में मान्य हैं, पर निकुंज रसविहार में मान–अभिसार, विरह–मिलन, परकीयात्व प्रेम की स्वीकृति मात्र भी नहीं होती, पर वहाँ निकुंज विहार में, युगल केलि क्रीड़ाओं के बहुविध लीला प्रसंगों, नित्य नवरस विलास–अवस्थाओं तथा शृंगार की साज सज्जाओं की बहुलता होती है। दोनों प्रकार की युगल लीलाओं में प्रमुख भेद साधक के भाव का हैं– ब्रजविहार में गोपीभाव प्रधान होता है जिसकी पराकाष्ठा रास में होती है जहां भक्त गोपीभाव से भगवान् श्रीकृष्ण के स्पर्श आदि की वांछा करता है तथा कान्ताभाव से प्रतिरूप में श्रीकृष्ण के वरण का अभिलाषी होता है, जितनी गोपियां उतने ही रूप धारण कर भगवान् श्रीकृष्ण रास के गोपीविहार प्रसंग में सबका मनोरथ पूर्ण करते हैं– श्रीमद्भागवत महापुराण का रास प्रसंग ब्रह्मभाव की इसी मानसिकता से अहर्निश स्मरणीय–चिन्तनीय और हृदय में अवधारणीय हैः– नद्याःपुलिन माविश्य गोपीभिर्हिम बालुकम्। रेमेतन्तरलानन्दकुमुदामोद वायुना। बाहुप्रसार परिरम्भकराल कोरुनीवी स्तनालभननर्मनखाग्र पातैः। क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुतंमयन् रतिपतिं रमयांचकार। (२६/४५–४६)

निकुंज विहार में श्रीवृषभानुनन्दिनी नित्य किशोरी–रसिकेश्वरी–परमेश्वरी–सर्वेश्वरी–वृन्दावनेश्वरी–रस अधिष्ठात्री–रसरूपा श्रीराधाजी रसरूप परब्रह्म परमानन्द स्वरूप रसिकेश्वर सर्वेश्वर–सच्चिदानंद भगवान् श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी शक्ति तथा उनकी एक रसरूपा अंतरंगभूता–हृदयेश्वरी है– ऐसी प्रियाजी भगवान् श्रीकृष्ण की हृदयाराध्या–वामांगिनी उन्हीं के अनुरूप अनन्तानन्त माधुर्य– लावण्य–सुकुमार्य–सौशिल्य रूपगुणालंकृता श्रीश्यामा हैं, क्योंकि युगलरूप में उनके रसरूप की पूर्णता देने से वे सदा सर्वदा रसपोषिका श्रीराधाजी की कृपा वांछा करते हैं; रसिकों के इस भाव में इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण निकुंज बिहारी रूप में नित्य राधारमण हैः–

'उदधि महामाधुर्य के रसिक दोऊ रस भौंन।
सदा सर्वदा एक रस, राजत राधा रौंन।। (श्रीमहावाणी सि.सुख)

निकुंज– रस–महल में प्रतिपल निकुंज–केलिरत प्रियाप्रियतम लाड़लीलाल श्यामाश्याम के नव नवभावोल्लसित हृदय के अनुकूल सहचरी भाव की सेवामें तत्पर रसिकों के लिए निकुंज–स्वामिनी श्रीप्रियाजी ही सर्वस्व हैं; सहचरियाँ उन्हीं की चरणाश्रित, एक मात्र

उन्हीं की कृपाकांक्षिणी होती हैं, निकुंज–रन्ध्रों से केलिरत प्रियाप्रियतम के तटस्थ भाव से दर्शनों की तल्लीनता ही उनका स्वसुख है। निकुंज दंपति के भावानुरुप युगल केलि सुख का तटस्थ भाव से चिन्तन करते हुये प्रतिपल नव नव निकुंज–क्रीड़ा के अष्टकालिक सेवा विधान करना, स्वामिनी श्रीराधाजी की कृपा से प्राप्त मंजरी–अनुचरी–किंकरी भाव की यह सहचरी सेवा, निकुंज की परिचर्या या निकुंज महल की टहल या किंकरता ही होती है, केवल कुंज रंध्रों से युगल केलि–आनंद की तटस्थ भावानुभूति की सहचरी का स्वसुख कहा जाता है जो गोपीभाव से भी श्रेष्ठतर माना गया है क्योंकि इसमें काम का ईश्वर परक भावनात्मक सुख भी निःशेष हो जाता है। इन उभयात्मक भावों की रसोपासनायें अनादि वैदिक श्रुतिप्रतिपादित सनातन प्रेमाभक्ति परम्परायें हैं।

परमरसिक–रसाचार्यों ने ब्रजरस और निकुंज रस की पूर्वोक्त अभीष्ट रसोपासना का अनेक प्रकार से प्रतिपादन किया है; उनके अनुसार ब्रजरस ने ज्ञानपरक हरिगुणानुवाद कथा प्रवचन नामस्मरण–कीर्तनादि भक्ति साधनाओं को अत्यन्त मधुर बना दिया है; ब्रजरस बिना रसिकों का लीला पदगायन ही असंभव था; ब्रज बिना काव्य का प्राणतत्व–रस ही मर जाता। ऐसे अलौकिक रसतत्व के मर्मज्ञ रसिकजन ही हैं। रसिकों द्वारा अभिलषित परमानंद–स्वरूप युगल रसमाधुरी की अनन्त रसानुभूति रसरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण की उभया रसात्मक नित्यलीलाओं के अहर्निश चिन्तन से ही सुलभ है जो लीलाधाम ब्रह्म वृन्दावन के अनवरत वास से सहज में ही साधित है। इसीलिये उन्होंने अनन्यनिष्ठा से ब्रज वृन्दावन धाम को बैकुंठ से भी बढ़कर महिमान्वित किया है :–

ब्रज को स्वाद बैकुंठ मैं नाहीं।
हरिगुन कथा भई जब मीठी ब्रजरस मिल्यौ तबै ता मांहीं।।
ब्रज रस बिनु कहा रसिक गावते ब्रज बिनु रस मरि जातौ।
ब्रज महिमा की वेंई जाने जिनकें है ब्रज सौं नातौ।।
भुवन चतुर्दस मांझ धन्य ब्रज धनि धनि ये व्रजवासी।
नागरीदास धन्य है सोई जो ब्रज रेनु उपासी।। (छूटक पद १४६)

ब्रजभाव में अहर्निश निमग्न, ब्रजरसिकों के अभीष्ट लीलावतारी परब्रह्म परमानंद स्वरूप रसेश्वर श्रीकृष्ण यहां यशोदा के लाड़ले–कन्हैया–नवनीतप्रिय–नन्दनंदन–घनश्याम–ब्रजमोहन–ब्रजचंद–गोपीजनवल्लभ–माखनचोर–नटनागर–वेणुवादक–मदनगोपाल–असुरउद्धारक दीनदयाल–ब्रजरक्षक–प्रणतपाल–धेनुचारी गोपबिहारी–गोवर्धनधारी–गोविन्दगोपालक, कुंजबिहारी–रासबिहारी–लाड़लीलाल राधारमण–युगलबिहारी श्यामाश्याम हैं। ऐसे

परमाराध्य के कोटिकामदर्परूप, अनन्तानन्त–सौंदर्य–लावण्य–माधुर्य–कारूण्य विभूषित, दिव्यगुणालंकृत–लीला स्वरुप का मनोयोगपूर्वक मनन–चिंतन–स्मरण–भजन–कीर्तन करते हुये उनके निरन्तर लीलास्वादन का निगमादि प्रतिपादित युगल कृपासाध्य परमलक्ष्य यहाँ उपदिष्ट हुआ है जो ब्रजनिष्ठा से ही सुलभ है। (श्रुतिका–श्रीराधामाधवविलास रस) अस्तु अनादि वैदिक रसो वै सः श्रुति द्वारा प्रतिपादित, रसिकों के परमाराध्य रसरूप परब्रह्म परमानंद–सच्चिदानंद भगवान् श्रीकृष्ण के युगलस्वरुप का अप्रच्छन्न तथा प्रत्यक्ष, दिव्यातिदिव्य नित्यनूतन लीलाधाम ब्रजवृन्दावन उन्हीं का रसरूप है तथापि 'नित्य विहार' की लीलाओं में ब्रजबिहारी का प्राकट्य इस दिव्यभूमि पर ही संभव होने से धाम–महिमा अपरिमित एवं अपरम्पार है। लीलाधाम में अपने प्राकट्य प्रभाव से अनादि वैदिक सदासर्वदा एकरस एकरुप–अखंड–परात्पररूप से अनिर्वचनीय वर्णनातीत परब्रह्म परमतत्व पूर्णावतार पुरुषोत्तम भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के नाम में अनेक प्रकारेण रसमयी परिणति हुई है और वही रसिकों का भाव्यमान परब्रह्म परमानन्द है।

ब्रज सम और कौऊ नाहीं धाम।
या ब्रज सौं परमेसुर हुँ सुधरे सुन्दर नाम।।
कृष्णनांव यह सुण्यौ गर्ग तैं कान्ह कान्ह कहि बोलैं।
बालकेलि रसमगन भये सब आनन्द सिंधु कलोलैं।।
जसुदानंदन दामोदर नवनीत प्रिय दधिचोर।
चीर चोर चितचोर चिकनियाँ चातुर नवलकिशोर।।
राधाचंद चकोर सांवरो गोकुलचंद दधिदानी।
श्री वृन्दावन चंद चतुर चित प्रेमरूप अभिमानी।।
राधारमन और राधावल्लभ राधाकान्त रसाल।
वल्लभ सुत गोपीजन वल्लभ गिरवर धर छबिजाल।।
रासबिहारी रसिक बिहारी कुंजबिहारी श्याम।। (छूटकपद १४७)

रसिकों का अभिलषित रसानंद तो परमानंदधाम श्रीवृन्दावन में ही है; श्री धाम नित्यानंद–अनन्तानन्द–आनंद की दिव्यभूमि है जहाँ युगल की नित्यकेलि–रसलीला का अनन्तानन्द मधुर नयनाभिराम–कौतुक रूपी दर्शनानंद सुलभ्य है, नित्यनूतन दिव्यभूमि में नित्यनूतन भाव तथा नित्यनूतन वयस में केलिरत श्यामाश्याम नित्य बिहार करते हैं, नित्य नूतन भावाभिभूत सह्रदय रसिकजन ही जहाँ नित्यधाम में वास करते हुये तत्सुख सुखित्व भाव से निकुंज सेवा का सुख प्राप्त करते हैं।

नित्य आनंद वृंदावन महियाँ।
नित्यकेलि कौतुक रसलीला निरखि निरखि दृग हारत नहियाँ।।
नित्य हरे द्रुम फूल फूलनि व्रुत जमुनातट अति सीतल छहियाँ।
नित्य नूतन सब लोग सनेही प्रीति रीति यह और न कहियाँ।।
नित्य रास नित्त कथा कीरतन निति प्रति गति मति रहे उमहियाँ।
नित्यवास तहां नागरिदासहिं श्यामाश्याम दयी गहि बहियाँ।। (वही११६)

ऐसे अखंडित अनन्तानन्त आनंद के धाम श्रीवृन्दावन की चरमोपलब्धि ही रसिकों का परमसाध्य है। इस दिव्यभूमि के वास से समस्त क्लेशों का परिहार हो जाता है; जन्म बन्धन से मुक्त जीवात्मा को परमानंद का अनवरत अखंड तथा अनन्त सुख सुलभ होता है। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने भगवान् श्रीकृष्ण के बालस्वरुप की वात्सल्य रसोपासना का उपदेश दिया था तथापि गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी ने शृंगार मंडन और स्वामिनी स्तोत्र में राधातत्व की स्वीकृति से ब्रजभाव–निकुंज भाव की उभयात्मक युगलरसोपासना की मान्यता प्रतिपादित की थी– जो सर्वविदित है। दाम्पत्य भाव की उभयात्मक मधुरोपासना सभी संप्रदायों में प्रचलित है। निम्बार्क सम्प्रदाय में परम्परागत रूप से पूर्वोक्त उभय रसात्मक रसिकोपासना की मान्यता रही है। श्रीनिम्बार्काचार्यकृत दशश्लोकी के पंचम श्लोक 'अंगेतु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमाननुरूप सौभगाम। सखी सहस्रे परिसेवितां सदा स्मरेभ देवी सकेलेष्ट कामदाम्।' से श्रीराधाभाव की सर्वोपरि निकुंज रसोपासना का प्रवर्तन माना गया है। युगल के नित्यबिहार के मूलाधार पर आधारित निम्बार्कीय निकुंज रसोपासना का वैशिष्ट्य–स्वरूप परमगुह्य अंतःपुर उपासना है। निम्बार्क–सम्प्रदाय के इस विशिष्ट–वृन्दावन–भाव में श्रीधाम वृन्दावन को रसिकों की राजधानी कहा गया है; यहां रसिक बिहारी श्रीकृष्ण रसिक राजेश्वर हैं तथा रसिक बिहारीणी श्रीस्वामिनी श्रीराधिकाजी परम राजमहिषी राजरानी हैं। ललितादिक अंतरंग अष्टसखियाँ– सहचरी सेवा परायण रसिक भक्त; वृन्दादेवी, यमुनाजी, नित्य नूतन, द्रुम बेलियाँ, पशु पक्षी, लीलाधाम वृन्दावन की चराचर लीला परिवेश आदि सभी रसिक रुप से निकुंज सेवा में तल्लीन हैं। नित्यनिकुंज बिहारी का केलिस्थल, वहाँ की सखी सहचरी रुप में रसिकों का सेवा संलग्न लीला परिकर, दम्पति की रतिरस लीलाओं का विविध विधान आदि सभी रस पोषक तत्व लीला विस्तारक रसरुप परब्रह्म परमानंद स्वरुप युगलतत्व के ही दिव्य स्वरुप हैं जो दम्पति की भावनानुसार उनकी निकुंज केलिका नव नव उत्साह से प्रतिपल नूतन विधान करते हैं,

तथा तटस्थभाव से परमानंद के रसास्वादन का गुणानुवाद ही जिनकी अभिलषित सुखानुभूति है। अनन्य धामनिष्ठा से अभिव्यक्त वृंदावन योगपीठ के निकुंज रसतत्व का ऐसा सैद्धांतिक भावपूर्ण निरूपण नागरीदासजी की महनीय निम्बार्कीय रसोपासना का प्रबल प्रतिपादन कर रहे है :–

वृन्दावन रसिक रजधानी।
राजा रसिक बिहारी सुंदर, सुंदर रसिक बिहारिनी रानी।।
ललिता ढिंग रसिक सहचरी जुगलरुप मद पानी।
रसिक टहलनी वृंदादेवी रची रूचिर निकुंज रवानी।।
जमुना रसिक रसिक द्रुम बेली रसिक भूमि सुखदानी।
इहां रसिक चश्यर नागरिया रसिक ही रसिक सबैं गुनमानी।। (वनजन प्रशंस–६८)

ऐसे अलौकिक परम गुह्य रसिक–योगपीठ वृन्दावन धाम का दुर्लभ्य वास रसिकों का ही परम सौभाग्य है। रस अधिष्ठात्री निकुंज स्वामिनीजी श्रीराधाजी ही रसिकों की परमाराध्या परमेश्वरी है क्योंकि उन्हीं की कृपा से रसिकों को सखी–सहचरी रुप से निकुंज सेवा में प्रवेश प्राप्त होता है; इसीलिए उन्हें एकांतिक भाव की अनन्य निष्ठा से श्रीस्वामिनीजी का चरणाश्रय ही अभीष्ट हैं जिसके लिए वे अत्यंत दैन्यभाव से श्रीस्वामिनीजी की कृपाकांक्षा करते हुये वृन्दावन के लिए करूण आत्मनिवेदन करते हैः–

अब तो कृपा करो श्रीराधा,
वृन्दाविथिन बसौं श्रीस्वामिनी छांडि जगत की बाधा।
तीन लोक गावत वा बन की लीला ललित आगाधा।
नागरिया पैं तनक ढरै तैं होय सहज सुख साधा।। (छू.प.६६)

वृन्दावनभाव–वैशिष्ट्य की निकुंज रसोपासनात्मक संक्षिप्त–सांगोपांगिक इस विवेचना में, रसिक शिरोमणि नागरीदासजी को, परब्रह्म परमानंद स्वरूप श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी सर्वेश्वरी–परमेश्वरी निकुंजस्वामिनी श्रीराधाजी के प्रति अनन्यनिष्ठा का चरमाश्रित–सर्वोपरि–महाभाव दर्शनीय–अनवरत–चिन्तनीय तथा हृदय में अवधारणीय हैः– कहा है परायो सब दीसत है सो राधे ही को, बिनही विचारै झूठे वचन उचारे जू।
राधे ही की भूमि यह राधे ही के खगमृग, राधे ही को नाम रटैं सांझ औ संवारै जू।।
राधे ही के सरवर ये तरवर है राधे जू के, राधे ही फूल फल नागर निहारै जू।
राधे ही दुहाई फिरै राधे ही कौ वृन्दावन, तुम कौन लला बीच हटक निहारै जू।।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

# पुष्टि मार्ग एवं उपास्यदेव भगवान् श्रीनाथजी

—श्री गदाधर भट्ट, झालावाड़

पुष्टिमार्ग में श्रीनाथजी को श्रीमद्वल्लभाचार्य के प्रमुख सेव्य स्वरूप माना जाता है। श्रीनाथजी में श्रीकृष्ण का स्वरूपात्मक विग्रह है। आचार्य का भक्ति दर्शन का संदेश श्रीनाथजी के दर्शन के रूप में प्रस्तुत हुआ था। पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण की आराधना के आग्रह का आधार है जगन्नाथजी पुरी में श्रीमद् आचार्य द्वारा विद्वानों के प्रश्नों का समाधान। महाप्रभुजी ने श्रीजगन्नाथजी के माध्यम से इस श्लोक से उत्तर दिया—

'एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतम्
एको देव देवकी पुत्र एव''

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से व्यक्त गीता मुख्य शास्त्र है। देवकी पुत्र श्रीकृष्ण ही मुख्य देव हैं, नाम ही मुख्य मंत्र (श्रीकृष्णः शरणं मम) है और कृष्ण सेवा ही मुख्य कर्म है। 'कृष्ण सेवा सदा कार्या'— अतः श्रीकृष्ण से बढ़कर कोई देव नहीं है। ''कृष्णात् परं नास्ति दैवम्'' (अन्तःकरण प्रबोध, आचार्य)

**श्रीमद् आचार्य एवं श्रीनाथजी का प्राकट्य :—**

पुष्टिमार्ग श्रीकृष्ण— सेवा, कथा एवं संकीर्तन रूप है। यहाँ भाव जगत् में परम तत्व भगवान् श्रीनाथजी हैं। आचार्य चरण ने श्रीनाथजी की प्रतिष्ठा भगवत् रूप में की है। इस विग्रह का मथुरा के निकट गोवर्धन पर्वत (गिर्राज) में स्वतः प्रादुर्भाव हुआ है। सर्वप्रथम सम्वत् 1466 श्रावण 3 रविवार के दिन ऊर्ध्व भुजा से प्रभु का प्राकट्य हुआ था। सम्पूर्ण स्वरूप सम्वत् वैशाख कृष्णा 11 पर अवतरित हुआ। **विशेष उल्लेखनीय है— श्रीमद् वल्लभाचार्य का भी प्राकट्य सम्वत् 1535 वैशाख कृष्णा 11 तिथि पर ही हुआ है।** रायपुर के निकट चंपारण में आप श्री की जन्म स्थली (बैठक) है। अतः आचार्य को पुरुषोत्तम भगवत् स्वरूप माना गया है।

आचार्य ने पुष्टिमार्ग में वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता एवं भागवत चार प्रधान ग्रन्थों को मान्यता देकर वैदिक ब्रह्मवाद और भक्ति के शुद्ध स्वरूप की स्थापना की। पुष्टिमार्ग में ब्रह्म संबंध से पूर्व नाम दीक्षा होती है जिसमें अष्टाक्षर मंत्र ''श्रीकृष्णः शरणं मम'' द्वारा जीव प्रभु की शरण में आता है। जीव भगवान् कृष्ण के प्रति आत्म निवेदन करता है। समर्पण भाव के दृढ़ीकरण के लिए तनुजा, वित्तजा एवं मानसी सेवाओं का विधान है। श्रेष्ठ मानसी सेवा है।

## पुष्टि भक्ति में अनन्यता :–

पुष्टिमार्ग में कृष्ण भक्ति में भगवान् श्रीकृष्ण ही आराध्य देव हैं जो प्रभु का बालस्वरुप है। भक्ति का आधार भागवत पुराण एवं गीतोपनिषद् है, जो पुष्टिमार्ग के संदर्भ ग्रन्थ हैं। वेद एवं ब्रह्मसूत्र सम्प्रदाय के दार्शनिक आधार हैं। भागवत का दशम स्कन्ध–भगवान् का हृदय माना गया है, जिसमें प्राकट्य, बाल लीलाएं, माखन चोरी, पूतना वध, गोवर्धन धारण, युगल गीत, महारास, कंस चाणूर वध जैसी अनेक लोक रंजक, लोक रक्षक लीलाएं हैं। साथ में भगवान् के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य जैसे गुणों का भी विवेचन है। लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण पुष्टिमार्ग के देवाधिदेव हैं तभी तो भक्त (वैष्णव) कहता है–

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम

## नाम स्मरण एवं जय श्रीकृष्ण :–

आचार्य चरण कहते हैं– सर्वदा सर्व भावेन भजनीयो ब्रजाधिपः (चतुःश्लोकी) पुष्टिमार्ग मे सदा सर्वभाव से ब्रजाधीश श्रीकृष्ण ही भजन करने योग्य हैं। तभी तो नाम स्मरण के साथ ''जय श्रीकृष्ण'' कहते हुए वैष्णवजन थकते नहीं हैं। यह जय श्रीकृष्ण भगवान् के प्रति अनन्य भक्ति का द्योतक है, पुष्टिमार्ग में अन्याश्रय सर्वथा निषिद्ध है।

## बाल स्वरूप की आराधना :–

जैसा कहा गया है, पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण के बाल स्वरूप की आराधना है, आधार है श्रीमद् भागवत। अपने उपास्य की बाल लीलाएं– हंसना, रोना, मचलना, ठुमक–ठुमक कर चलना, तुतलाना ये सब भक्ति के सहज आधार हैं। भक्त यहाँ अभिभूत हो जाता है। परमात्मा का विशुद्ध रूप निष्छल प्रेम एवं सरल स्वभाव युक्त बालरूप में ही पूर्णरूप से प्रस्फुटित होता है। यही पुष्टि भक्ति की पीठिका है। यहाँ प्रभु का माहात्म्य भी प्रकट होता है।

## पुष्टि सेवा विधान :–

पुष्टिमार्ग में नित्य सेवा राग, भोग और शृंगार के साथ की जाती है। विशेष अवसर पर विशिष्टता होती है। सेवा विधान में राग, भोग और शृंगार की महत्वपूर्ण

भूमिका है। राग के अन्तर्गत गायन, वादन एवं नृत्य का समावेश है। गायन कीर्तन का चरम उत्कर्ष हवेली संगीत है। राग–भोग के माध्यम से संगीत एवं पाक कला का चरम विकास हुआ है जो प्रभु से तादात्म्य में सहायक हुआ है। ये सब प्रभु को समर्पित है।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये।

मुगलकाल में अन्य कलाओं के साथ पाक कला चरम पर थी। श्री गुसाईंजी ने विविध पक्व सामग्रियों का सेवा में विनियोजन कर पाक कला को उत्कृष्टता प्रदान की है। सकड़ी, अनसकड़ी, फलाहार तथा चौस्य, लेस्य, भोज्य, चर्व्य, भक्ष्य–पेय आदि।

**भोग राग की अवधारणा :–**

मनुष्य की सहज विलासमयी वृत्ति का उदात्तीकरण प्रभु की सेवा में भोग, राग और शृंगार के माध्यम से होता है। प्रभु को समर्पित कर भक्त अहमता–ममता का परित्याग करने लगता है। अन्नकूट, छप्पनभोग महोत्सवों में सामग्रियों का आधार श्रीमद् भागवत है। छप्पनभोगों के पीछे आठ निधि स्वरूप गुणित सात घरों (पीठ) की कुल **56** प्रकार की पाक सामग्रियों का समावेश है। वास्तव में सामग्रियाँ तो सैंकड़ों की संख्या में होती है।

**छप्पनभोग का उद्देश्य :** वास्तव में भोगों के माध्यम से भक्त अपनी भोग कामनाएं प्रभु के चरणों में अर्पित कर जन्म–मृत्यु के चक्र से छूटना चाहता है। वास्तव में यह मार्ग भोग का न होकर समर्पण, त्याग का मार्ग है।

**अष्टयाम सेवा एवं कीर्तन :–**

जहाँ तक सेवा की प्रासंगिकता है, लालू भट्टजी ने अपनी सेवा कौमुदी में सेवा पद्धति में प्रामाणिकता सिद्ध की है। श्री गोपीनाथजी दीक्षित ने भी साधन दीपिका में सेवा प्रणाली का विवरण दिया है। पुष्टिमार्ग में नवधा भक्ति एवं अष्ठयाम सेवा है। प्रातः मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग एवं सायं उत्थापन, संध्या भोग, संध्या आरती एवं शयन का प्रावधान है। प्रभु के प्रतिदिन भाव और ऋतु को ध्यान रखकर आनंदित करने के निमित्त अष्टयाम सेवा में कीर्तन करने की परम्परा है। ये पद अष्टछाप भक्तों के होते हैं। ये हैं क्रमशः परमानन्द दास, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, कुंभनदास, सूरदास, चतुर्भुज दास, छीतस्वामी, कृष्णदास। इसी क्रम में कीर्तन सेवा होती है तथा ऋतु के अनुसार राग–रागनियां गायी जाती है।

## पुष्टिमार्ग में उत्सव–मनोरथ :–

पुष्टिमार्ग में उत्सव प्रियता विशिष्ट गुण है। भक्त का तन, मन यहां तक स्वयं को हर्ष एवं उल्लास में भुलाकर आनन्द मग्न होना उत्सव है। (सुबोधिनी) उत्सवों के प्रकार हैं– 1. उत्सव, 2. महोत्सव, 3. महामहोत्सव 4. मनोरथ। इनमें क्रमशः उत्साह एवं उल्लास में वृद्धि होती है। भागवत में उल्लेख है कि श्रीकृष्ण जन्मोत्सव पर घर–घर में नन्द महोत्सव हुआ था। ''तदा महोत्सवं यदुपुर्यां गृहे–गृहे।'' (भा. 15/45/33) मनोरथ में मन की इच्छानुसार प्रभु सुख के लिए उल्लास, उमंग और कामनाओं का प्रभु में विनियोग किया जाता है। उत्सवों के आधार भी श्रीमद् भागवत है। सम्प्रदाय कल्पद्रुम में उत्सव मनोरथों का विस्तृत विवरण मिलता है। मनोरथों में अन्नकूट, नन्द महोत्सव, फाग, कुंज, डोल, फूल बंगला, हिंडोला, दीपोत्सव आदि प्रमुख हैं। इन उत्सव मनोरथों में भोग, राग, शृंगार का समन्वित रूप देखा जा सकता है। शृंगार से जुड़ी पिछवाइयाँ पुष्टिमार्ग की कलात्मकता एवं चित्रांकन की पर्याय है। कपड़े–मलमल, मखमल आदि पर जरी, मोती, सलमा, सितारों, गोटा, किनारी से निर्मित कृष्ण लीला युक्त पिछवाइयाँ देखते बनती हैं। ऋतु एवं उत्सव के अनुरूप पिछवाइयाँ रंग–बिरंगी एवं चित्रों से उकेरी हुई होती हैं जो प्रभु के सान्निध्य में अपेक्षित वातावरण का सृजन करती हैं। ये पिछवाइयाँ विग्रह के पीछे, मंदिर के चारों ओर भी लगाई जाती हैं। कलात्मक एवं बहुमूल्य होने से ये बेजोड़ हैं। इनका मुख्य उद्देश्य सौन्दर्यीकरण एवं सज्जा है।

## वल्लभ दिग्विजय एवं बैठकें :–

पुष्टिमार्ग भगवत् अनुग्रह का मार्ग है। प्रभुकृपा से ही भक्त–भक्ति, भजन और सेवा से सांसारिक दुःखों से निवृत्त होता है। आचार्य ने पुष्टि सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार के लिए तीन बार समग्र भारत की परिक्रमा की जिसे 'वल्लभ दिग्विजय' कहा जाता है। आचार्य ने 84 बैठकों की स्थापना कर सुदूर उत्तर से दक्षिण पर्यन्त, पूर्व से पश्चिम तक पूरे देश को सांस्कृतिक सूत्र में जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रवचनों के साथ बैठकों में भागवत कथा द्वारा भक्तों में कृष्ण भक्ति का बीजारोपण किया– क्योंकि भागवत के बिना भक्ति संभव नहीं है।

श्री भागवत शास्त्रेण बिना भक्तिः कथं भवेत्।।48।। (साधना दीपिका – गो. गोपीनाथ)

ये बैठकें आज हमारे पुष्टिमार्ग की ऊर्जा केन्द्र हैं।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

# आज नंद के आनन्द

–श्री श्याम सुन्दर गिरनारा

फिर आ गई श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, श्रीकृष्ण के संदेश को लेकर आओ हम भगवान् के संदेश का चिंतन करें। भगवान् का महान् संदेश उनके छोटे से ग्रंथ गीता में संकलित है। जहां भी दृष्टि जायेगी, दृष्टि ठहरेगी नहीं, जैसे अर्जुन की दृष्टि विराट् पर कहीं ठहर नहीं पा रही थी। अतः हम कोई एक वचन लेकर उस पर विचार कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर 'संशयात्मा विनश्यति' भगवान् ने संशय के साथ आत्मा शब्द को जोड़ दिया। अहंकार खंडित होता है मगर आत्मा अखंड होता है। ऐसे में अगर कोई संशयात्मा है तो इसका अर्थ है वह पूर्णतया संशय से घिरा हुआ है, विश्वास का पूर्ण अभाव है। अगर कोई कहे–थोड़ा विश्वास है; तो यह नहीं चलता क्योंकि थोड़ा भी अविश्वास उस विष की बूंद के समान है जो अल्प मात्रा में होने पर भी पूरी मारक सिद्ध होती है। यही वजह है श्री वल्लभ आज्ञा करते हैं– अविश्वासों न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः। लेकिन जीव जो है अविश्वास के स्वभाव को छोड़ता नहीं। भगवान् यह भी कहते हैं– 'समता में ही सुरक्षा का उपाय ढूंढो'। अब एक तरफ संशय है– पूरा संशय दूसरी तरफ समता है। अब समता और विश्वास का क्या तालमेल है क्योंकि समता का अर्थ है– सुख दुख में समदृष्टि जबकि विश्वास सुख को लेकर है। अगर सुख मिले, दुख का निवारण हो तो विश्वास अन्यथा अविश्वास। परंतु ऐसा विश्वास जो समता के अर्थ की पुष्टि करता है, बुद्धि का परिष्कार है और प्रज्ञा का उज्ज्वल रूप। समता के साथ समझ जुड़ी है अतः एक बात स्पष्ट हो जाती है कि इस संसार में सुख, दुख, लाभ, हानि, जन्म, मरण आदि द्वन्द्व स्वाभाविक हैं। जब उनकी स्वाभाविकता समझ आती है तब अन्तर्द्वन्द्व के स्थान पर आत्म विश्वास का अभ्युदय होता है। निश्चय ही यह वह विश्वास नहीं है जो दुख से मुक्ति पाने के लिये है अपितु वह विश्वास है जो दुःख को उसके उचित स्थान पर रखता है, इसे सत्य का आदर कहा जा सकता है। एक उदाहरण है– किसी को भी मृत्यु के कारण दुख होता है, या मृत्यु नहीं होनी चाहिये, इस आग्रह के कारण दुःख होता है? जन्मे की मृत्यु निश्चित है। अतः वह दुख का कारण नहीं है अपितु दुख 'मृत्यु नहीं होनी चाहिये' इस आग्रह या इच्छा के कारण होता है। समता में जीने का अर्थ है इस आग्रह को छोड़कर जीना। समता का अर्थ है– एक ऐसा विश्वास जो सभी आग्रहों, इच्छाओं से मुक्त है, वह सहज है। वैसे समता को विश्वास के साथ जोड़ना ठीक नहीं क्योंकि समता पूर्ण है फिर भी आरंभ में सत्य के स्वीकार के साथ एक अलग ही तरह के विश्वास की उत्पत्ति होती है। स्वार्थ का विश्वास अलग है, पारमार्थिक विश्वास अलग है। स्वार्थ का विश्वास टूट सकता है। यदि नहीं टूटता जैसे दुर्जन की हिम्मत और विश्वास तो वह अश्रद्धा प्रधान होता है, परंतु पारमार्थिक विश्वास में श्रद्धा और सत्य प्रधान होते हैं। उसमें पूरी समझ विद्यमान होती है। जैसे भगवान् कहते हैं– 'दुखालयं अशाश्वत्' यह संसार दुखों का घर है। तो फिर ठीक है। इस संसार के सत्य पर भरोसा बड़ा किमती है। सुख का भरोसा गलत भरोसा है, दुख का

भरोसा सही भरोसा है। दुख ही इस संसार का सत्य है तो ऐसे में सुख की आशा करना व्यर्थ है। यही गीता कहती है भगवान् की वाणी। तो क्या सच्चे और स्थायी सुख का यहां कोई प्रबंध नहीं है? यह भी संशय है मगर पूर्ण संशय नहीं यदि सच्चे उत्तर की जिज्ञासा के लिये जगह छोड़ी जाय। पूरी गीता का मुख्य संदेश है, शरणागति अर्थात् जो भगवान् की शरण में आयेगा वह सभी कष्टों से, बंधनों से स्वतः मुक्त हो जायगा। हमने पहले बात की कि इच्छा–अनिच्छा ही दुख का कारण है, पुष्टिमार्ग कहता है– इच्छा अनिच्छा भी जीव की अहंता–ममता के कारण है, वहीं असली बंधन है। तो ऐसे में दुख से मुक्ति पाने के लिये अहंता ममता से मुक्ति पाना जरूरी होगा। पुष्टिमार्ग में यह संभव होता है– ब्रह्म संबंध से। जो ब्रह्म संबंध दे पुष्टिमार्ग में वही गुरु है। इसकी शुरुआत हुई स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण से जिन्होंने श्रावण मास के शुक्लपक्ष में एकादशी की मध्य रात्रि में प्रकट होकर श्री वल्लभ को ब्रह्म संबंध मंत्र से अवगत कराया। अतः जो कृष्णं वंदे जगद्गुरूम् कहा जाता है वह ठीक है। वे ही भगवान् गीता में कह रहे हैं– 'संशयात्मा विनश्यति'। वे ही भगवान् ब्रह्म संबंध का संदेश दे रहे हैं पुष्टिमार्ग में। अर्थात् जो अहंता ममता भगवान् को अर्पण करेगा उसका उद्धार हो जायेगा, जो संशयात्मा होकर अहंता ममता भगवान् को अर्पण नहीं करेगा उसका नाश हो जायेगा। 'नमे भक्त प्रणश्यति' भक्त का नाश नहीं होता। मगर श्रीवल्लभ नहीं चाहते हैं कि दैवी जीव प्रभु से विमुख रहें तथा कष्ट भोगें। अतः वे अविश्वास से सावधान करते हैं। अविश्वास कर्तव्य नहीं है। तो क्या विश्वास कर्तव्य है? महाप्रभुजी ने यह नहीं कहा कि विश्वास कर्तव्य है बल्कि यह कहा कि अविश्वास कर्तव्य नहीं है। तो इसके मूल में जाना होगा कि जीव ऐसा क्या करे जिससे अविश्वास न हो। उसे अविश्वास के कारण का पता लगाना होगा। अविश्वास का कारण है– भगवद् विमुख अहंता ममता। ऐसी अहंता ममता जो भगवान् से विमुख है या विमुख कर देती है। ब्रह्म संबंध अहंता ममता को भगवान् के सम्मुख कर देता है– मेरा क्या, प्रभु सब आपका, मैं कौन? प्रभु आपका दास ही तो। अब संसार में अहंता ममता न रहेगी तो सुख दुख की जड़ ही कट जायेगी। तब अविश्वास न रहेगा, अविश्वास न रहेगा तो समता होगी, समता होगी तो शरणागति के मार्ग में आने वाली सभी बाधाएं स्वतः दूर हो जायेंगी। इसका मतलब साफ है अगर कोई व्यक्ति संसार का सुख चाहता है, दुख नहीं चाहता तो उसे अविश्वास से कोई नहीं बचा सकता लेकिन जो सुख दुख के द्वन्द्व में न उलझकर सर्वतो भावेन् भगवान् की शरणागति को ही महत्व देता है वह कभी अविश्वास के बंधन में नहीं फंसेगा। इसीलिये भगवान् कहते हैं– सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। श्री वल्लभ कहते हैं– 'तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम्।' यह कोई विनाशशील बात नहीं है। यह जो श्रीकृष्ण जन्माष्टमी हर साल आती है वह शरणागति के शाश्वत संदेश की पुनः स्मृति कराने के लिये आती है, जो भाग्यशाली इसे सुनकर समझ लेते हैं वे हर प्रकार से अपना जीवन पूर्णतया भगवान् की शरण में रखने के लिये सतत् प्रयत्नशील होते हैं। हम इसकी कामना न करें परंतु शरणागति के सत्य को समझने के लिये भगवच्चरणारविन्द की शरण ग्रहण करें। 'बुद्धि प्रेरक कृष्णस्य पाद पद्मं प्रसीदतु।'

।। जय श्रीकृष्ण ।।

# श्रीनाथधाम नाथद्वारा एवं वहाँ की जन्माष्टमी

—श्री कैलाशबिहारी वाजपेयी (पूर्व सी.ई.ओ. मंदिर मंडल, नाथद्वारा), उदयपुर

'श्री' सामान्यतया 'लक्ष्मी' 'वैभव' 'सम्पन्नता' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, इस दृष्टि से 'श्रीनाथ' का अर्थ 'विष्णु' समझा जा सकता है। परंतु नाथद्वारा के 'श्रीनाथजी' का नाम महाप्रभु वल्लभाचार्यजी द्वारा श्रीकृष्ण के उस स्वरूप को दिया गया है जिनका प्राकट्य विक्रम संवत् 1535 में वैशाख कृष्ण एकादशी को उत्तरप्रदेश में मथुरा के पास जतीपुरा के गिरिराज—गोवर्धन पर्वत पर हुआ। महाप्रभु वल्लभचार्य का जन्म भी इसी दिन चम्पारण्य (बिहार) में हुआ। संवत् 1549 की फाल्गुन शुक्ल एकादशी को उन्हें स्वप्न में श्रीनाथजी के दर्शन हुए तथा प्रेरणा मिली कि वे गोवर्धन आकर प्रकट हुए स्वरूप की महिमा प्रकट कर प्रतिष्ठित करें। संवत् 1559 की वैशाख शुक्ल तृतीया से मंदिर का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ तथा संवत् 1564 में अर्द्धनिर्मित मंदिर में ही श्रीनाथजी की प्रतिष्ठा महाप्रभु ने कर दी। 1576 की वैशाख शुक्ल तृतीया को मंदिर का कार्य पूर्ण हुआ। प्रभु श्रीनाथजी के इसी समय के कीर्तनकारों में महाकवि सूरदास भी थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य के देहावसान के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र गोस्वामी गोपीनाथजी तथा इनके देहान्त के पश्चात छोटे पुत्र गुसाईं विठ्ठलनाथजी ने अपना अंतिम समय निकट देखा तो अपने पूज्य पिता महाप्रभुवल्लभाचार्य से प्राप्त श्रीकृष्ण के सात स्वरूप अपने सातों पुत्रों को सौंप दिये। परंतु सातों स्वरूपों की ध्वजा, एवं सुदर्शन स्वयं श्रीनाथजी ही धारण करते हैं।

श्रीनाथजी के अतिरिक्त उनके अन्य सात स्वरूपों 1. श्रीमथुरेशजी, कोटा 2. श्रीविठ्ठलनाथजी नाथद्वारा 3. श्रीद्वारिकाधीशजी, कांकरोली 4. श्रीगोकुलनाथजी, गोकुल 5. श्रीगोकुलचन्द्रजी, कामवन 6. श्रीबालकृष्णलालजी, सूरत तथा 7. श्रीमदनमोहनलालजी कामवन की पुष्टिमार्गीय पद्धति से आज भी सेवा होती है। कालांतर में मुगल बादशाह औरंगजेब के समय विक्रम संवत् 1726 में गोस्वामी श्रीदामोदरजी एवं उनके काका श्रीगोविन्दजी श्रीनाथजी के मंगल विग्रह के साथ गोवर्धन से, मेवाड़ महाराणा के निमंत्रण पर, सुरक्षा हेतु, आगरा, कोटा, पुष्कर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, जोधपुर होते हुए बनास नदी पर स्थित सिंहाड़ ग्राम में आ गये। विक्रम संवत् 1728 की फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को श्रीनाथजी पाट पर विराजे और तभी से इस धाम का नाम "श्रीनाथद्वार" पड़ा। वि.सं. 1835 में अजमेर—मेरवाड़ा के मेरों ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। इधर पिंडारियों ने नाथद्वारा में घुस कर धन—जन को खूब हानि पहुँचाई। वि.सं. 1858 में सिन्धिया की गिद्धदृष्टि भी नाथद्वारा पर पड़ी और उसने खूब लूट—खसोट की। तिलकायित गोस्वामी श्रीगिरधरजी ने मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह से परामर्श कर उदयपुर हेतु प्रस्थान किया तथा माघ कृष्णा दशमी वि.सं. 1858 को भगवान् श्रीनाथजी उदयपुर पहुँचे। प्रारम्भ में एक छोटे मंदिर में व बाद में नया मंदिर निर्माण हो जाने पर श्रीनाथजी उसमें विराजे।

सिंधिया की सेना उदयपुर भी आ पहुँची और घोर अत्याचार किया, अतः श्रीनाथजी लगभग चार वर्ष घस्यार (उदयपुर—गोगुन्दा मार्ग पर) विराजे और संवत् 1864 में पुनः नाथद्वारा आ पहुँचे, जहाँ वे अभी भी विराज रहे हैं।

श्रीनाथजी भगवान् श्रीकृष्ण का बाल स्वरूप हैं। वैष्णव लोग मंगल विग्रह को 'मूर्ति' न कह कर साक्षात् स्वरूप ही पुकारते हैं। उदयपुर तथा घस्यार में श्रीनाथजी के चित्र की ही सेवा होती है। महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रणीत होने से उनके भक्तजन वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव कहलाते हैं। प्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित दर्शन 'शुद्धाद्वैत' तथा भक्ति के क्षेत्र में उनका साधन 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है। पुष्टिमार्गीय वैष्णव अपने शुद्ध प्रेम द्वारा श्रीकृष्ण भक्ति में लीन हो जाता है और उनके अनुग्रह से सहज ही में अपनी आकांक्षित वस्तु प्राप्त कर लेता है।

बाल स्वरूप श्रीकृष्ण की दिनचर्या अनुसार श्रीनाथजी के चार दर्शन प्रातः से दोपहर तक, मंगला (जगने पर), शृंगार (शृंगार होने पर), ग्वाल (सखाओं के साथ खेलने पर) तथा राजभोग (भोग लेने पर) होते हैं। इसी प्रकार अन्य चार दर्शन (कुछ समय तीन ही) अपराह्न, उत्थापन (विश्राम से जगने पर), भोग (भोग ग्रहण करने पर), आरती एवं शयन (रात्रि विश्राम से पूर्व) होते हैं। मंगला, राजभोग में तथा सायं शयन पूर्व आरती होती है और अन्य दर्शनों की अपेक्षा ये दर्शन कुछ अधिक समय रहते हैं। बाल स्वरूप होने के कारण दर्शनों का समय लम्बा नहीं रखा गया है।

बाल स्वरूप श्रीनाथजी की सेवा में राग (संगीत व कीर्तन), भोग (प्रसाद) तथा शृंगार (नितनूतन) का महत्व है। श्रीनाथजी की कीर्तन परम्परा से ही हवेली संगीत का प्रादुर्भाव हुआ है। बालकृष्ण स्वरूप श्रीनाथजी का निवास (मंदिर) ही हवेली है। श्रीनाथजी के प्रसाद के नाना प्रकार एवं स्वाद वैशिष्ट्य समस्त विश्व में अद्वितीय हैं।

श्रीनाथजी के 17 भंडार व पेढ़ियाँ तथा महाप्रभु वल्लभाचार्य की 84 बैठकें समस्त भारत में स्थित हैं, श्रीनाथजी मंदिर की व्यवस्था हेतु राजस्थान, महाराष्ट्र व गुजरात के तीन तीन वैष्णव, अन्य प्रांतों से 2 तथा राजसमन्द जिले के कलेक्टर समेत 12 सदस्यों का बोर्ड है एवं तिलकायित गोस्वामीजी उसके पदेन अध्यक्ष हैं। राज्य सरकार की ओर से बोर्ड सचिव के रूप में मुख्य निष्पादन अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। श्रीनाथद्वारा आने वालों हेतु घी–तेल के प्राचीन कुए, केसर आदि पीसने हेतु सोने चांदी की चक्की तथा श्रीनाथजी के रथ दर्शनीय हैं। श्रीनाथद्वारा के पास बनास नदी यमुना सदृश तथा अरावली की पर्वत शृंखला गोवर्धन–गिरिराज सदृश ही पूज्य हैं। ब्रज संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव भी रहन–सहन, बोली, खान–पान आदि में स्पष्ट दिखाई देता है।

श्रीनाथद्वारा में भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को जन्माष्टमी तथा नवमी को नन्द महोत्सव बहुत धूमधाम से मनाये जाते हैं। जन्माष्टमी के दिन प्रातःकाल श्रीनाथजी का पंचामृत स्नान होता है। रात्रि 12 बजे श्रीकृष्ण जन्म के दर्शन होते हैं। इस अवसर पर 21 तोपों की सलामी दी जाती है। दूसरे दिन नवमी को सेवा गीरों में से नंद–यशोदा तथा गोप–ग्वाल बनते हैं। दर्शनार्थी दूध–दही से भिगो दिये जाते हैं। सारा मंदिर दूध–दही से सराबोर रहता है। मथुरा एवं गोकुल से भी अधिक उत्साह श्रीनाथद्वारा में इन दिनों रहता है। आय एवं वैभव की दृष्टि से भगवान् वेंकटेश्वर (तिरुपति–मद्रास) सर्वप्रथम हैं। परन्तु राग (संगीत), भोग (प्रसाद) तथा शृंगार की दृष्टि से यह मंदिर भारत में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में अद्वितीय हैं। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

# लौकिक गोपी–नृत्य–स्पर्द्धा में अलौकिक महारास का अहसास

–दयाशंकर पालीवाल

कृष्ण शब्द में 'कृष' का अर्थ है – होना, याने अस्तित्व या सत्। 'ण' का अर्थ है– निवृति, उलझनों और संघर्षों का अभाव याने 'आनन्द'। अर्थात् जो शाश्वत्, अस्तित्वमय, त्रिकाल सत्य और आनन्द है, वही कृष्ण है, परब्रह्म है। सत् एवं आनन्द के योग से चित् तो उद्घाटित हो ही जाता है और हो जाता है ''सच्चिदानन्द''। कृष्ण–आकर्षित करते हैं, सेंटर ऑफ ग्रेविटेशन हैं, सेंटर ऑफ मेग्नेटिज्म हैं, आकर्षण का केन्द्र बिन्दू (न्युक्लियस) है जिस ओर सभी वस्तुऐं सहज ही खिंचती चली आती है, बिना खिंचे रह पाना किसी के बस में नहीं। 'श्री' शब्द राधा वाचक भी है अतः 'श्रीकृष्ण' राधापति भी हैं। राधा, कृष्ण की स्वरूपभूता शक्ति हैं। राधा, कृष्ण हैं। कृष्ण, राधा हैं। नित्य अभिन्न होने पर भी राधा, कृष्ण की परमानन्द प्रदायनि अलौकिक आह्लादिनी शक्ति हैं। परस्पर प्रिया–प्रियतम भाव अतुलनीय व अचिन्त्य है। तपस्वी ऋषि, देव व प्रेमी भक्त प्रभु प्रेम सुधारस–पान की चाह में अवतीर्ण व्रज–गोपिकाओं को भी रास का अलौकिक आनन्द प्रदान किया, कृष्ण ने। मुरली की सुरीली ध्वनि जहां ब्रह्म लोक वासियों को सम्मोहित कर लेती है वहीं कोटि कोटि व्रज सुंदरियों को उन्मत्त कर, सारे लोकालाज को भूलाकर प्रियतम कृष्ण से मिलने को खिंच ले आती है। कृष्ण की विषधर–भुजंग के सहस्त्रों फणों पर थिरक–थिरक कर नृत्य करने की कला जहां कालिया के समस्त पापों का विनाश करती है वहीं महारास नृत्य बड़े–बड़े तत्व ज्ञानियों के लिये रहस्य की वस्तु है। आज भी वैष्णव मन्दिरों में राग मालव में परमानन्द दास का पद– 'रास विलास गहे कर पल्लव, एक एक, भुज ग्रीवा में ली, द्वै द्वै गोपी बीच बीच माधव निर्तत संग सहेली' का गान रस रासेश्वर प्रभु के रास के रसानन्द के रसभाव से श्रद्धालु भक्तों के हृदय को रस से सराबोर कर देते हैं। 'जाउंगी वृन्दावन भेंटोंगी गोपाले, देखुंगी नयन भर श्याम तमाले' का गान गोपियों के कृष्ण से मिलने की तड़फ का अहसास करा देता है। राग शमन में कृष्णदास का पद– ''श्याम सजनी शरद् रजनी पुलिन मध्य नृत्य नाट्य ता तृगता ता तृगता तिरप बंद करत कामिनी, गिड़गिड़ा गिड़ गिड़ा गिड़ गिड़ धि धि तालांग लेत झां झां झां झनन ननन सुर उपंगिनी'' का गान कृष्ण के महारास के दृश्य को जीवंत कर देता है। ऐसा ही अलौकिक दृश्य जीवंत हो उठा पुष्टिमार्ग की प्रधानपीठ नाथद्वारा में, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित स्पर्द्धा 'गोपी–नृत्य' की प्रस्तुति के अवसर पर। **श्रद्धालु पुष्टि भक्त दर्शकों को लौकिक ''गोपी–नृत्य–स्पर्द्धा'' में अलौकिक महारास का अहसास हुआ।** विभिन्न संस्थाओं के विविध वर्ग के प्रतियोगियों ने कृष्ण,

राधा व गोपियों के सुंदर व आकर्षक परिधान पहन कर गोपी–नृत्य स्पर्द्धा में एक से बढ़कर एक संगीतमय–आकर्षक–अनूठा नृत्य प्रस्तुत किया तो श्रद्धालु दर्शकों से खचा खच भरा हॉल न सिर्फ तालियों की गड़ गड़ाहट से गूंज उठा बल्कि रास की रसधार से भी रस सिक्त हो गया। श्री कृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव के उपलक्ष्य में श्रीकृष्ण की लीला–प्रसंगों की जानकारी देने और जन–जन के मन में कृष्ण–भक्ति व पुष्टि भाव प्रसारार्थ ''श्रीकृष्ण'' थीम रखकर नवाचार युक्त (अभिनव) प्रयोगात्मक पहल के रूप में पांच दिवसीय स्पर्द्धाओं का आयोजन किया जाता रहा है– जिसमें श्री कृष्ण विषयक– 1. चित्रांकन, 2. भजन–संगीत, 3. हवेली–संगीत, 4. प्रवचन, 5. आलेख–वाचन (पेपर–रिडींग) स्पर्द्धाएं, प्रत्येक चार वर्गो– कनिष्ठ (कक्षा 8 तक), वरिष्ठ (कक्षा–9 से 12), महाविद्यालय (कॉलेज एवं युनिवर्सीटी) और शैक्षणेत्तर (आमजनों) के लिए आयोजित होती है। इस बार प्रधान पीठाधीश्वर पूज्यपाद तिलकायत महाराजश्री से आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण के रास और महारास के भाव से 'गोपी–नृत्य' स्पर्द्धा का विशेष आयोजन बढ़ाये जाने से अब स्पर्द्धाएं पांच से छ दिवसीय हो गई हैं। संभाग व राज्य स्तरीय प्रतिभागी इनमें उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं और सफल संभागियों को मन्दिर मण्डल द्वारा आकर्षक पुरुष्कार, प्रमाण–पत्र और पूज्य तिलकायत महाराजश्री एवं चि. गो. श्री विशालबावा सा. का आशीर्वाद भी प्राप्त होता है। प्रत्येक स्पर्द्धा के विशेषज्ञों, निर्णायकों और सहयोगी महानुभावों का पूज्य महाराजश्री द्वारा सम्मान किया जाता है। स्पर्द्धाएं उत्तरोत्तर और भी उत्तमावस्था को प्राप्त होती जा रही है क्योंकि इसमें दूरस्थ स्थानों, विद्यालयों, महाविद्यालयों, तकनिकी व अकादमिक संस्थानों के प्रतिभावान संभागी और आमजन उच्च स्तरीय तैयारी के साथ भाग लेकर हृदय–स्पर्शी प्रस्तुती देते हैं। जिसका आनन्द पुष्टिभक्त अच्छी संख्या में उपस्थित होकर लेते हैं। विविध वर्गों और विभिन्न विषयों की विलक्षण प्रतिभाओं तथा आमजन को पुष्टि–मार्ग से जोड़ने के लिए प्रधानपीठ के पुष्टि–प्रसार–प्रकोष्ठ की यह अभिनव, अनूठी पहल सुखद् परिणाम देने लगी है। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी दिवस पर पुष्टिमार्गीय परम्परा से नेमित्तिक राग, भोग, श्रृंगार की दिव्य सेवा, जन्म पर इक्कीस तोपों की सलामी, नन्द महोत्सव के आनन्द के अतिरिक्त जन्माष्टमी के दिन निकलने वाली भव्य झांकियों और दिव्य प्रभु की सुखपाल में विराजित भव्य शोभायात्रा देश–विदेश से आये श्रद्धालु भक्तों के हृदय को अलौकिक आनन्द–रस से सराबोर कर देती है। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

# महाप्रभु गिरिधर प्रकटे, पुष्टिमार्ग रस प्रकट किये

–श्री हरिनारायण नीमा, उज्जैन

दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में एक सौ चौपनवीं वार्ता परम भगवदीय श्री. मेहाधीमर की है। मेहा मत्स्य आखेट किया करते थे उनकी जीविका का अन्य कोई साधन नहीं था।

एक समय श्री गुसाईंजी गोकुल पधारने के लिये गोपालपुर घाट पर विराज रहे थे, यमुनातट आपश्री को सर्वप्रिय लगता था, एक वैष्णव ने मेहा को एक रूपया देकर मछली पकड़ने से रोका और कहा जब तक प्रभु चरण यहां विराजते हैं तुम यमुनाजी में जाल नहीं डालोगे। एक रूपया लेकर मेहा ने कहा था मुझे खाने के लिये दिलवाना। मेहा को प्रसाद मिला, प्रभु का प्रसाद लेते ही उसके देह–मन–प्राण शुद्ध हो गये, प्रभुचरण के साक्षात् पूर्ण पुरूषोत्तम स्वरूप में उन्हें दर्शन हुए। दर्शनोपरांत मेहा ने कहा :–

''महाराज! मुझे शरण में ले लो''। कृपासिंधु ने कृपा कर के नाम सुनाया– मेहा की वाणी मुखरित हुई,

''श्री विट्ठल प्रभु महा उदार,
महापतित शरणागत लीने निर्धार।
वेद पुराण सार जो कहिये,
सो पुरूषोत्तम हाथ दिये।
महाप्रभु गिरिधर प्रकटे,
पुष्टिमार्ग रस प्रकट किये।।''

उपस्थित वैष्णवजनों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि प्रातःकाल यह व्यक्ति मछली पकड़ने को जाल बिछाये बैठा था, और अभी इसकी बुद्धि कितनी निर्मल हो गई है। वस्तुतः जिसकी वाणी में वाग्देवी विराजित हो जाती है वह जाति या पेशे से भले ही पतित हो, पवित्र हो जाता है, महाकवि कालिदास कहते हैं– ''वाग्देवी वदनांबुजे, वसति चेत को नाम दीनो जनाः।'' प्रभु श्रीनाथजी की कृपा जिस जीव पर हो जाती है उसके एक नहीं; अनेक जन्मों के बंधन क्षणभर में छूट जाते हैं।

मेहा अब शुद्ध–बुद्ध–प्रबुद्ध हो गये, श्रीगोवर्द्धनधर के अन्नकूटोत्सव पर वे गोकुल से जतीपुरा (गोवर्द्धन) गये। श्री सन्मुख सारंग राग में अंग्रांकित पद गाया– ''हमारो देव

गोवर्धन पर्वत, गोधन जहां सुखारो। सुरपति को बलि भाग न दीजे, कीजे मतो हमारो।।१।। आदि

पदगान करते करते मेहा मूर्छित हो गये। श्रीगुसाईंजी ने उनका स्पर्श किया...... और मेहा पूर्ववत् स्थिति में आ गये। गोपालपुर आकर भगवत् सेवा में सपरिवार तत्पर हो गये। उनकी स्नेह समन्वित सेवा से प्रभु रीझ गये। एक बार मेहा घर पर नहीं थे और उनकी पत्नी को प्रसव हो गया, वह रोने लगी, मेरी कोख से कैसा पुत्र जन्मा है जिसने मेरी 'सेवा' छुड़ा दी। भक्त विरह कातर करूणामय श्रीठाकुरजी ने आज्ञा की कि– ''तूं रो मत, स्नान कर कच्छा लगाकर मेरी सेवा कर।''

मेहा पत्नी निहाल हो गई उसने आज्ञा प्रमाण स्नानादि कर प्रभु सेवा की। 'पुष्टिमार्ग' के सुधी पाठकों से मैं यह निवेदन करना चाहूँगा कि हृद्गत विशुद्ध प्रेम में किसी प्रकार का बंधन नहीं होता, वाधाजी रजपूत और वीरबाई के प्रसंग आप हम सभी ने पढ़े हैं– परम प्रेम के पल्टे नियम बदल जाते हैं, यह हर एक के लिये नहीं, ऐसी मनोभावना निर्मित होने के लिये उच्च कोटि की पात्रता अर्जित करनी पड़ती है, जो कि भगवत् कृपा से ही संभव है, सेवा विषयक आचार्य भगवंतों द्वारा निर्धारित प्रणालिका, नियम, उपनियम का पालन करना वैष्णवों के लिये अनिवार्य है। मनमाने तरीकों से की गई सेवा ठाकुरजी स्वीकार नहीं करते हैं।

'नवरत्न' में श्रीमद् आचार्य चरण आज्ञा करते हैं–

''सेवा कृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया। अतः सेवा परं चित्तंविधाय स्थीयतां सुखम्।।''

मैंने देखा है आजकल तथा कथित वैष्णव सूतक और जननाशौच पालने में पीढ़ियों की गिनती शुरू करते हैं।

आशौच निर्णयादि ग्रंथों में दी गई व्यवस्थाओं का पूर्णतः पालन करना चाहिये। अस्तु।

मेहाधीमर, धोंधी कलावंत, चूहड़ा, मोहना आदि भगवदीय महानुभाव हमारे पुष्टि सम्प्रदाय की आचार संहिता (**Code of Conduct**) के खुले पृष्ठ हैं। अपनी अपनी मर्यादाओं में रह कर ही इन महान् पुरूषों ने प्रभु कृपा संपादित की है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

# जनन–आशौच (पिण्डरू) विचार–सारिणी

(गतांक से आगे.......) –श्री ब्रजभूषण भट्ट, प्रधान उपाध्याय

(धर्म–सिन्धु, निर्णय–सिन्धु, आशौच–निर्णय आदि ग्रन्थों के मतों पर आधारित)

| क्र.सं. | किसका | किसको | कितने दिन |
|---|---|---|---|
| 1. | सात मास के बाद जीवित बालक के जन्म पर | माता–पिता व समस्त सपिण्डों (सात–पीढ़ी तक) बन्धुओं को | ब्राह्मण को १० दिन व १० रात्रि, क्षत्रियों को १२ दिन व १२ रात्रि, वैश्यों को १५ दिन व १५ रात्रि, गूजर, लोधा, जाट, ब्रजवासी–नाई, गोरवा आदि को १६ दिन या १६ रात्रि, शूद्रों को ३० दिवस या ३० रात्रि। |
| 2. | सप्तम मास के बाद मृत बालक के जन्म पर | माता–पिता एवं समस्त सपिण्डों को | ब्राह्मण को १० दिन या १० रात्रि, क्षत्रियों को १० दिन या १० रात्रि, वैश्यों को १५ दिन या १५ रात्रि, गुर्जर, लोधा, जाट, नाई, गोरवा आदि को १६ दिन–१६ रात्रि, शूद्रों को ३० दिन ३० रात्रि। |
| 3. | सप्तम मास के बाद बालक जीवित पैदा हो और नाल छेदन के बाद मर जाने पर। | माता–पिता एवं समस्त सपिण्डों को | उक्त विवरण के अनुसार सम्पूर्ण दिवस–रात्रि आशौच। |
| 4. | सप्त मास के बाद बालक जीवित पैदा हो और नाल छेदन के पूर्व मर जाने पर | माता–पिता को | सम्पूर्ण दिवस–रात्रि ( ब्राह्मण– १०, क्षत्रिय–१२, वैश्य–१५, सछूद्र गुर्जर, लोधा जाट, नाई, गोरवा आदि–१६ दिवस रात्रि) |
| 5. | सप्त मास के बाद बालक जीवित पैदा हो और नाल छेदन के पूर्व मर जाने पर | सपिण्डों को | ३ दिवस–३ रात्रि। |
| 6. | बेटी का जापा प्रथम बार माता–पिता के घर में होने पर। | माता पिता को | ३ दिवस–३ रात्रि। |
| 7. | बेटी का जापा प्रथम वार माता–पिता के घर में होने पर। | भाई बहन व घर के सगे बन्धुओं को | १ दिवस–१ रात्रि। |
| 8. | बेटी का जापा दूसरी वार माता–पिता के घर में होने पर। | माता पिता को | १ दिवस–१ रात्रि। |
| 9. | बेटी का जापा दूसरी वार माता–पिता के घर में होने पर। | भाई–बहन व बन्धुओं को | कुछ नहीं। |
| 10. | बेटी का जापा तीसरी वार माता–पिता के घर में होने पर। | माता पिता एवं भाई बहनों, बंधुओं को | कुछ नहीं। |
| 11. | गर्भपात पंचम या षष्ठ मास में होने पर | पिता व सपिण्डों को | ३ दिवस ३ रात्रि। |

| क्र.सं. | किसका | किसको | कितने दिन |
|---|---|---|---|
| 12. | गर्भपात पंचम या षष्ठ मास में होने पर | माता को | जितने मास का बालक हो। पाँच मास का तो ५ दिवस, यदि छैः मास का तो छैः दिवस का आशौच। |
| 13. | गर्भस्राव (चतुर्थ मास तक) होने पर | पिता व सपिण्डों को | स्नान मात्र। |
| 14. | गर्भस्राव (चतुर्थ मास तक) होने पर | माता को | जितने मास का बालक हो (कम से कम ३ दिन)। |
| 15. | दस दिन बाद जन्म की सुनने पर | पिता को | स्नान मात्र। |
| 16. | समानोदक को (८ से १४ पीढ़ी तक) में बालक के जन्म पर | समानोदकों को | ३ दिन। |
| 17. | समानोदकों में १० दिन बाद बालक के जन्म की सुनने पर | समानोदकों को | कुछ नहीं (स्नान मात्र) |
| 18. | सगोत्री (१५ से २१ पीढ़ी तक) में बालक के जन्म पर | सगोत्रियों को | स्नान के १ दिन। |
| 19. | अनौरस (दत्तक) पुत्र के बालक जन्म पर | माता–पिता व सपिण्डों को | ३ दिन। |
| 20. | अनौरस (दत्तक) पुत्र के बालक जन्म पर | समानोदकों को | स्नान के १ दिन। |
| 21. | अनौरस (दत्तक) पुत्र के बालक जन्म पर | सगोत्रियों को | स्नान मात्र। |
| 22. | भिन्न पितृक (माता एक पिता भिन्न) द्वारा सहोदर भाई के जन्म पर | पूर्व भाई को | स्नान के १ दिन। |
| 23. | स्त्री दूसरे के संग रह कर बालक को जन्म दे | पूर्व पति को | ३ दिन। |
| 24. | राखी हुई स्त्री के बालक जन्म ले | बाद के पति को | ३ दिन। |
| 25. | सन्निपात आशौच (पहिले पिण्डरू में दूसरा पिण्डरू आ जाय) में। | सपण्डियों को | पहिले पूर्व के पिण्डरू में शेष दिवस आशौच अर्थात् दशम दिवस में दूसरा भी निवृत्त। |
| | 1. पहिले बड़े पूर्ण पिण्डरू में नवम दिवस दूसरा समान पिण्डरू आ जाय (बड़े पिण्डरू में समान बड़ा पिण्डरू आ जाय) | माता–पिता को | सम्पूर्ण–आशौच (जिस दिन बालक जन्म ले उस दिन से)। |

| क्र.सं. | किसका | किसको | कितने दिन |
|---|---|---|---|
| | 2. पहिले बड़े पूर्ण पिण्डरू में छोटो तीन दिवस को पिण्डरू नवम दिन आ जाय तो | सपिण्डियों को | पहिले बड़े पिण्डरू में छोटो दूसरो पिण्डरू दसवें दिन निवृत्त हो जाय। |
| | 3. पहिले बड़े पिण्डरू में दूसरों बड़ा समान पिण्डरू दशम् दिवस की रात्रि में आ जाय तो | सपिण्डियों को | पहिले पिण्डरू की निवृत्ति के बाद दो दिवस और अधिक आशौच। |
| | 4. यदि दशवें दिन की रात्रि के पूर्ण होने में अन्तिम एक प्रहर बाकी हो, और उस समय (प्रहर) में दूसरा आशौच आ जाय तो | सपिण्डों को | तीन दिन अधिक आशौच। |
| | 5. यदि अधिक माने गये आशौच में पुनः कोई दस दिन (सम्पूर्ण) का आशौच आ जाये तो | सपिण्डों को | सम्पूर्ण पूरा आशौच। |
| 25. | सन्निपात–आशौच | | |
| | 6. पहिले छोटे पिण्डरू (तीन दिवस) में दूसरो बड़ो पिण्डरू (सम्पूर्ण दिवस) यदि आ जाय | समानोदकों को सपिण्डों की तरह | शेष दिवस अर्थात् पूर्व के पिण्डरू की निवृत्ति के बाद बड़े पिण्डरू के शेष दिवस और आशौच। |
| | 7. पूर्व के छोटे पिण्डरू (तीन दिवस) में यदि समान दूसरा तीन दिवसीय आ जाय तो | समानोदकों को | पहिले छोटे पिण्डरू के साथ दूसरो छोटो पिण्डरू निवृत्त। |
| | 8. यदि पहिले बड़े पिण्डरू (सम्पूर्ण या तीन दिवस) के साथ दूसरो छोटो पिण्डरू (पाक्षिक 1½ दिवस) आ जाय तो | सपिण्डों व समानोदकों को | पहिले पिण्डरू के साथ दूसरा पिण्डरू निवृत्त। |
| | 9. यदि छोटे पिण्डरू में दूसरो बड़ों पिण्डरू आ जाय तो | सगोत्रियों एवं समानोदकों को | दूसरे पिण्डरू के बचे शेष दिवस अधिक आशौच। |
| 26. | अतिक्रान्त आशौच | | |
| | 1. दस दिन पीछे जन्म की सुने तो | पिता को | स्नान |
| | 2. दस दिन पीछे जन्म की सुने तो | भिन्न पितृक सहोदरा भाई को | १ रात्रि |
| | 3. दस दिन पीछे जन्म की सुने तो | समानोदकों को | कुछ नहीं |

टिप्पणी :– सन्निपात आशौच में दस दिवसीय आशौच की तरह पन्द्रह सोलह दिवसीय आशौच की गणना करना वर्तमान परिस्थिति में अपेक्षित एवं उचित है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

# नारदीय भक्ति सूत्र

–पं. श्री विष्णुदत्त पुरोहित

भक्तिमार्ग के विभिन्न आयामों के दिग्दर्शन नारदीय भक्ति सूत्र में प्रकट किये गये है, जिनका क्रमशः पालन नवधा भक्ति के नो सौपान में उत्तरोत्तर वृद्धि इस पांचवें पुरुषार्थ से ब्रह्म का सामिप्य प्रदान करती हैं किन्तु भक्तिमार्ग के प्रारम्भिक पथिकों के गमनमार्ग में लौकिक व वैदिक कर्मो को भी आवश्यक बताया है जब तक कि जड़ता (बुद्धि में स्थैर्य) उत्पन्न नहीं हो जाती है। वर्तमान में भक्तिमार्ग के पथिक प्रमाद की अवस्था में मूल वैदिक और लौकिक कर्मो का उलंघन कर मात्र भक्ति मार्ग में रहने के लिये आलस्य को धारण कर लेते हैं जो युक्ति संगत नहीं है।

इसी बिन्दु पर नारदीय भक्ति सूत्र सं. 1 से 14 तक की व्याख्या एवं गीता में दिये आदेशो के उदाहरण से कर्मो की प्रधानता एवं अवधूत अवस्था के पश्चात (भक्त के स्थित प्रज्ञ होने के पश्चात्) इनका छोड़ना, त्याग करना ही श्रेयस्कर रहेगा ऐसा सूत्रों से सिद्ध होता है। अतः भक्ति सूत्र सं. 1 से 14 तक यथावत वर्णित है–

सूत्र–1. अथातो भतिं व्याख्यास्यामः।।१।।

जीवों के कल्याणमयी भक्ति के स्वरूप की और साधनों की व्याख्या करते हैं।

सूत्र–2 सात्वस्मिन् परम प्रेम रूपा।।२।।

वह ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है। अर्थात् भगवान् में अनन्य प्रेम हो जाना ही भक्ति है। ज्ञान कर्मादि साधनों को त्याग स्पृहा शून्य भाव से चित्त वृत्ति को भगवान् में लगाना।

सूत्र–3 अमृत स्वरूपा च ।।३।।

अनन्य प्रेम ही अमृत है। प्रेमामृत से ही अमृत की प्राप्ति होती है।

सूत्र–4 यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।।४।।

इस प्रेम और अमृत्व को पाकर तृप्ति हो जाती है इसी को पुष्टि (**Nourishment**) कहते है। इसी तृप्ति से आनन्द की अनुभूति होती है।

सूत्र–5 यत्प्राप्त न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति।।५।।

भक्ति के प्राप्त होन पर भक्त इच्छा, द्वेष आदि किसी विकार से दूषित नहीं होता है और आसक्त व उत्साही भी नहीं होता हैं।

इसी सूत्र को लक्षित कर श्रीशुकदेवजी कहते हैं

यस्यभक्तिर्भगवति हरो निःश्रेय से श्वरे।

विक्रीऽतो ऽमृताम्भोघौ किं क्षुद्रैः खात को दकेः।।

प्रेमामृत समुद्र में डूबा हुआ भक्त क्यों अन्य पदार्थो की कामना करे। जैसे अमूल्य खजाना प्राप्त होने पर तुच्छ वस्तुओं की कामना नहीं करते। आनन्द के अतिरेक में प्रियतम के तद्‌रूप होने पर गोपियाँ बरबस ही कह उठती हैं–

स्याम तन स्याम मन स्याम है हमारों धन,
आठौ जाम ऊधो हमें स्याम ही सो काम हैं।
स्याम हिये स्याम जिये स्याम बिनु नाहि तिये,
आंधे की सी लाकरी आधार स्याम नाम है।
स्याम गति स्याम मति स्याम ही हैं प्राणपति,
स्याम सुख दायीं सों भलाई सोभा धाम हैं।
ऊधो तुम भये बौरें पाती लैके आये दौरे,
जोग कहा राखे यहाँ रोम रोम स्याम हैं।।

सूत्र–6 यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति।।६।।

जिस प्रेम रूपा भक्ति को जानकर भक्त उन्मत्त, स्तब्ध और आत्माराम बन जाता है। भगवत् प्रेम के प्रकट होने से पागल हो जाता है। भक्ति के नशे में चूर हुआ दिन रात प्रभु के गुण गाता है।

बाह्य क्रियाओं और घटनाओं से अन्जान रहता है। प्रभु की लीलाओं की चर्चा में ही मन का रंजन करता है। श्रीमद्भागवत के 11 वें स्कन्ध के दूसरे अध्याय के ३६ व ४० वें श्लोक में उनके गुणों का वर्णन निम्नानुसार बताया है–

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानिकर्माणि चयानि लोके।।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेद सङ्गः।।३६।।
एवं व्रतः स्व प्रियनाम कीर्त्या जातानुरागो द्रुत चित्त उच्चैः।।
हसत्यथो रोदिति र्दौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोक बाह्य।।४०।।

इस सूत्र में भक्त के लक्षण को उक्त भागवदार्थ में भी प्रमाणित किये हैं यथा–

"कबहुँक हँसि उठि नृत्य करै रोवन फिर लागे।
कबहुँक गद् गद् कंठ शब्द निकले निकसे नहीं आगे।।
कबहुँक हृदै उमंग बहुत ऊंचै सुर गावै।
कबहुँक ह्वै मुख मौन गगन जैसो रहि जावै।।

इस स्थिति में बाह्य ज्ञान सून्य जड़ता (स्थिरता) को प्राप्त हुए भक्त प्रेमाद्वैत या रसाद्वैत हो जाते हैं–

"न हि स्वात्मा रामं विषय मृग तृष्णा भ्रमयति।।"

सूत्र–7 सा न कामयमाना निरोध रूपत्वात्।।७।।

यहाँ प्रेमाभक्ति सर्वथा त्याग रूप हो गई है। सन्तान, पत्नि, धन, कीर्ति, स्वर्गादि

के प्रति प्रयास रहित कामना शून्य निष्काम भाव से ओत प्रोत एवं प्रयास सैथिल्य हो जाता है।

भगवान् कपिल ने आदेश किया कि मेरे प्रेमी भक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सामिप्य, सारूप्य या सायुज्य रूपी किसी भी मुक्ति को देने पर भी नहीं ग्रहण करते।

सूत्र–8 निरोधस्तु लोक वेद व्यापार न्यास।।८।।

अर्थात् लौकिक और वैदिक (समस्त) कर्मो के त्याग को निरोध कहते हैं।

सूत्र–9 तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च।।६।।

उस प्रियतम में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषयों में उदासीनता को भी निरोध कहते हैं।

सूत्र–10 अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता।।१०।।

इस सूत्र में अन्याश्रय का निषेध बताया है। इसी सिद्धान्त को पुष्ट करने हेतु रहीमदास ने कहा–

प्रीतम छबि नैनन बसी पर छबि कहा समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि आय पथिक फिर जाय।।

सूत्र–11 लोके वेदेषु तदनुकूला चरणं तद्विरोधिषुऽदासीनता।।११।।

लौकिक और वैदिक कर्मों में भगवान् के अनुकूल कर्म का निष्पादन ही उसके प्रतिकूल विषयों में उदासीनता है।

अनन्य भाव से भगवदर्थ कार्य करने से उनके प्रतिकूल कार्यो का अपने आप त्याग हो जाता है।

सूत्र–12 भवतु निश्चय दाढर्यादूर्ध्वं शास्त्र रक्षणम्।।१२।।

भगवान् के अनुकूल कर्म की निष्पत्ति में भी शास्त्र में वर्णित मर्यादा और विधानों का पालन करना नितान्त आवश्यक है।

सूत्र–13 अन्यथा पातित्य शङ्कया।।१३।।

भक्त जो जानबूझ कर शास्त्र की मर्यादा का पालन न करे और प्रेम का नाम लेकर दोष मुक्त होना चाहे वह अवश्य ही गिर जाता है।

सूत्र–14 लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादि व्यापारस्त्वा शरीर धारणावधि।।१४।।

लौकिक कर्मो को भी बाह्यज्ञान रहने तक विधि पूर्वक करना चाहिये।

तैतिरीय भाष्य वार्तिक में भी श्रुति वाक्य निरूपण करती है कि–

"नित्यानाम क्रिया यस्माल्लक्षयित्वैव सत्वरा।
प्रत्यवाय क्रिया तस्माल्लक्षणार्थे शता भवेत्।।

गीता में भी वर्णाश्रम के अनुसार लौकिक व शास्त्रोक्त कर्म करने का निर्देश पदे पदे दिये गये है यथा–

''कर्मण्ये वाधिकारस्ते.........(2/47)

न हि कर्मणैव हि संसिद्धिम्.........।। (3/20)

इसके अलावा भी (3/5, 3/15, 3/20, 3/22 से लेकर 16/24 तक 'सहजं कर्म कौन्तेय सदोष मपिन त्यजेत' आदि कर्मो में प्रवृत्त करने हेतु आदेश हुए हैं)

अतः वेद, स्मृति और आचार तीनों प्रमाणों से द्विज के लिये आयुपर्यन्त विहित कर्माचरण की आवश्यकता सिद्ध होती है। इस पर भी कर्तव्यहीनता के परिलक्षित होने पर यह उसके प्रारब्ध का मन्द होना ही मानना पड़ेगा।

श्री मदाचार्य चरण ने भी अपने ''विवेक धैर्याश्रय'' ग्रंथ की 16वीं कारिका में आज्ञा की है कि ''यथा कथञ्चित् कार्याणि कुर्यादुच्चाव चान्यपि।।''

''लौकिक वैदिक छोटे बड़े सब कार्य जैसे भी बन पड़े करना चाहिये।''

किन्तु प्रेमा भक्ति के अतिरेक उदय के साथ ही प्राप्त जड़ता, दृढ़ता, देहाघ्यासादि के विलोप होने पर भक्त स्वतन्त्र, स्वच्छन्द और वीतराग (अवधूत वेष में) हो स्वतः ही कह उठता है।

न लाज तीन लोक की न वेद को कह्यौ करै।
न संक भूत प्रेत की न देव जच्छ ते डरैं।।
सुने न कान और की द्रसै न और इच्छना।
कहै न बात और की सुभक्ति प्रेम लच्छना।।

ऐसी उत्कृष्ठ श्रेणी के भक्त सभी लौकिक व वैदिक कर्मो के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं तो उसके अन्य कार्य फिर उसका प्रियतम ही करता है।

अन्यथा यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वतर्ते काम कारतः।

न सः सिद्धी भवाप्नोति न सुखं न पराम् गतिम्।। के अनुसार सुख, सिद्धि व परम गति नहीं मिलती। अतः नवधा भक्ति श्रवण, कीर्तनादि के साथ साथ कर्म करते रहने से ही भगवान् का वह परमोच्च प्रेम प्राप्त होता है जो वे स्वयं आज्ञा करते है–

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्या कार्य व्यवस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तु मिहार्हसि।।

इसीलिये देवर्षि ने सूत्र में कर्म के अभाव में भक्त के पतित होने की आशंका इंगित की है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

# "आखिर कैसे मनावे राधा मान से कृष्ण को?

–श्री गोपालदास वल्लभदास नीमा, इन्दौर

नित्य राधा मान करती है– "नित्य उठ मान मनावे हो प्यारी। कौन टेव पड़ी ब्रज सुन्दरी पिय को पाय पड़ावे हो ।।१।। "गंगाबाई"। कृष्ण नित्य ही राधा रानी को मान मनाने के प्रयास करते– कभी स्वयं कृष्ण सखी का रूप धारण कर पधारने, कभी ललिताजी को भेज कर ऐसे ही अनेक प्रयत्न कर मान मनाते। एक वक्त राधाजी का मान प्रभु अनेक प्रयत्न करने बाद भी न मना सके तो यमुनाजी को ही स्वयं का श्रृंगार धारण करा कर भेजा। कृष्ण ने अपने श्रीमस्तक का मुकुट यमुनाजी के माथे धराया, दाएँ कर कमल माल एवं बाऐं कर कमलन छड़ी इत्यादि सब श्रृंगार अपने श्रीहस्त से धराया और साक्षात् कृष्ण स्वरुप ही यमुनाजी राधाजी को गाढ़े मान से मनाने नृत्य करती पधारती है– दाऐं कर कमल माल, बांए कमलन छड़ी मुकुट जामा पटका भेष कृष्ण सम धार्‍यो है। बन माल मुक्त माल गुंज माल सोहे उर।। नृत्यन पग नुपुर झन झन्कारी है।। चौंक उठी श्रीराधा प्यारी अति अद्भूत रूप ये निहारो है। बान जब किनी मान छांड चल दिनी संग। <u>कृष्ण से मिलावे "कृष्णा" नाम ये तिहारो है</u>।।

यमुनाजी का घनाघन स्वरूप का दर्शन कर राधाजी आश्चर्य में पड़ गई कि ये दूसरा कृष्ण कैसे आया– कृष्ण भी श्याम है लेकिन यमुनाजी अतिसहः श्याम है। कारण जिस बादल में जितना ज्यादा जल होता है वह ज्यादा श्याम होता है। यमुनाजी का मुखारविन्द इससे ज्यादा श्याम है कारण कृपाजल आपके मुखारविन्द पर अधिक होने से ये कृष्ण से ज्यादा जीवों पर कृपाजल बरसाती है। जब यमुनाजी ने राधाजी को सब बात कही– 'कृष्ण का सिरताज मुकुट आपके चरणों में नत मस्तक है, कमल माल आपकी विजय का प्रतीक है, कमलन छड़ी का उपयोग भी आप कृष्ण पर कर सको हो।' जब ये सब बातें कही, राधा का मान तत छण छूट गया एवं यमुनाजी के संग पधार कर अपने प्राणनाथ के गले लग गई। <u>तब से यमुनाजी यही श्रृंगार धारण करती हैं।</u>

एक समय राधाजी ने विचार किया, कृष्ण से विनती की–कृपानाथ आप मान करें हम सब राधारानी एवं इनकी सखियां मिलकर आपश्री का मान शीघ्र मनाय लेंगी। कृष्ण ने राधा से कहा आप हमें न मना सकेंगी, आप यह जिद छोड़ दो। राधाजी अड़ ही गई कि आप मान तो करो हम मनाय लेंगी।

खेर.........कृष्ण को राधारानी की बात रखने हेतु कृष्ण स्वयं मान में बिराज गए। राधाजी ने अनेकानेक उपाय स्वामी को मनाने हेतु किए लेकिन वे एवं उनकी सखियां निराश हो गई। प्रभु का मान न मना सकी। हताश होकर मन ही मन राधा पछताती है कि मैंने स्वामी को मान करने का क्यों कहा? जबकि कृष्ण ने आज्ञा की थी कि वे मान न मना सकेंगी।

भगवदीयों से सुना है कि राधा कृष्ण की स्तुति करने लगी "सर्व मार्गेषु नष्टेषु कलौ च खल धर्मिणि। पाषंड प्रचुरे लोके कृष्ण एवं गतिर्मम।।१।। दैन्यता राधा रानी में प्रगट हुई। राधा ने यमुनाजी का पूजन कर यमुनाजी से कृष्ण को मान से जगाने की विनती की। "सुरा सुर सु पूजित" "गोर मैं यमुना देवी पूजी"। यमुनाजी ने प्रयत्न कर कृष्ण का मान मनाया। राधा कृष्ण से गले लगी। विनती किनी–कृपा नाथ आपश्री को मान करने का नहीं कहूंगी। धन्य है राधा कृष्ण का प्रेम। सदा अमर रहेगा। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

# "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"

–श्री ललित शंकर शर्मा (चिंतनखण्ड से साभार)

श्रीकृष्ण ही परमब्रह्म हैं, परतत्व हैं, एक हैं, अद्वितीय है, सच्चिदानन्द हैं, परिपूर्ण हैं। उन्हीं से अक्षरब्रह्म एवं क्षरब्रह्म का प्रादुर्भाव हुआ है। अप्राकृत रूप में वे ही आत्म चैतन्य हैं तथा प्राकृत रूप में वे ही क्षर प्रकृति हैं। वे स्वयं ही कूटस्थ अक्षर हैं, निरंजन एवं निराकार हैं तथा वे ही पूर्ण पुरुषोत्तम, सगुण, साकार, सविशेष परमात्मा हैं। सम्पूर्ण अक्षर एवं क्षर अर्थात् परा एवं अपरा प्रकृति उन्हीं का स्वरूप है, उन्हीं में समाहित है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश आदि त्रिदेव भी उन्हीं के अंशभूत गुणावतार हैं। आह्लादिनी सान्धिनी एवं संवित आदि शक्तियां जो राधा, लक्ष्मी एवं दुर्गा के रूप में जानी जाती हैं उन्हीं की तेजोमय परमात्म शक्तियां हैं अर्थात् वे ही सर्वरूप हैं वे ही सर्वशक्तिमान हैं।

"सर्व खल्विदं ब्रह्म" के अनुसार जो कुछ भी स्थूल, सूक्ष्म, दृष्य एवं अदृष्य गोचर तथा अगोचर हैं उन सब में एक मात्र परमब्रह्म श्रीकृष्ण ही व्याप्त हैं। अपनी विलक्षण शक्ति से वे सबमें व्याप्त होकर भी सबसे परे एवं अतीत हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड उन्हीं का विराट स्वरूप है। रज्जु–सर्पवत् भ्रांति से श्रीकृष्ण में ही संसार की प्रतीति होती है। श्रीकृष्ण से भिन्न जो कुछ दिखाई देता है वह प्रतीति मात्र है। यथार्थ की पहचान न होने से विभ्रम होता है। विभ्रम से सत्य वस्तु से इतर कुछ भिन्न वस्तु की प्रतीति होती है। यह प्रतीति मानसिक अध्यास मात्र है। इसकी निवृत्ति यथार्थ ज्ञान से ही होती है। श्रीकृष्ण का अस्तित्व ही सर्वत्र है, उन्हीं का एकमात्र अस्तित्व है यही यथार्थ ज्ञान है।

यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि सर्वत्र श्रीकृष्ण का ही अस्तित्व है तथापि व्यवहार दशा में उनका व्यवहार भी उनकी भूमिका के अनुरूप ही होता है। व्यवहार दशा में श्रीकृष्ण सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी भूमिगत व्यवहार का ही आदान प्रदान करते हैं। आत्मस्वरूप में स्थित होने पर अथवा प्रेमावस्था में ही समस्त व्यवहार शिथिल हो जाता है। यही उनकी रहस्यमयी लीला है। प्रेमावस्था प्राप्त हुए बिना श्रीकृष्ण से पहचान नहीं होती और श्रीकृष्ण को पहचान लेने के बाद उनके अतिरिक्त किसी का अस्तित्व शेष नहीं रह जाता। प्रभु को जान लेने के बाद भी अपनी नियोजित भूमिका में रहते हुए उनसे प्रेम करते हुए उन्हें ही अपना सर्वस्व मानना विशुद्ध भक्ति का समुज्ज्वल स्वरूप है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

# अद्वितीय पिता–पुत्र गुरू चरण

–श्रीप्यारेलाल पारिख, भीलवाड़ा

हम सब जानते हैं कि ठाकुरजी ने अपने महात्मय को प्रकट करने के लिये अपने मुखारविन्द स्वरूप अर्थात श्रीमहाप्रभुजी श्रीवल्लभाधीश के रूप में पृथ्वी पर संवत् 1535 में जन्म लिया एवं श्रीठाकुरजी ने आपश्री को आज्ञा कि की देवी जीवों को नाम देकर एवं ब्रह्म संबंध देकर मुझे सोंपे जिन्हें में कभी नहीं छोडूंगा। जैसे कि ग्रंथ सिद्धान्त रहस्यम् में श्रीमहाप्रभुजी ने कहा है।

ब्रह्म सम्बन्धकरणात्सर्वेषां देह जीव योः।
सर्वदोष निवृत्तिः स्यात् दोषाः पंचविद्याः स्मृताः।।

अर्थात ब्रह्मसंबंध करने से देह और जीव संबंधी सभी दोषों की अवश्य निवृत्ति होती है। श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीठाकुरजी के आज्ञा करने पर पुष्टिमार्ग को प्रकट किया एवं सर्व प्रथम दामोदरदास हरसानी (दमला) एवं कृष्णदास मेघन को ब्रह्म संबंध दिया। श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीठाकुरजी की सेवा पद्धति बताई एवं श्रीगोवर्धननाथजी को पाट बिठाकर सेवा प्रारम्भ की। आपश्री ने पृथ्वी परिक्रमा कर पुष्टिमार्ग का प्रचार प्रसार किया एवं कईं वैष्णवों को शरण लिया एवं श्रीठाकुरजी को सौंपा। श्रीविट्ठलनाथजी ने पुष्टिमार्ग में वैभव प्रदान किया और अपने पिता श्री के मार्ग पर चलकर पुष्टिमार्ग का उत्थान कर हम जैसे जीवों को प्रभु से स्नेह करना सिखाया।

मैं यहां कुछ वार्ताओं के उदाहरण देकर यह चर्चा करना चाहता हूं कि श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसाईंजी जो पिता पुत्र है ये अद्वितीय पिता–पुत्र हैं। हमें अन्यत्र ऐसी जोड़ी देखने को नहीं मिलती है।

श्रीगुसांईजी का प्राकट्य हुआ उसी रोज गंगाजी में से एक वैष्णव को एक मूर्ति मिली जिसको उसने श्रीमहाप्रभुजी को सौंपा। आपश्री ने उसे विट्ठलनाथजी नाम दिया। उसी रोज श्रीगुसाईंजी का प्राकट्य हुआ एवं आपने इस पुत्र बालक का नाम श्री विट्ठल रखा। श्रीमहाप्रभुजी ने दमला से कहा यह बालक पुष्टिमार्ग को बहुत आगे ले जायेगा एवं हमारे छोड़े कार्य को पूरा करेगा। इसके सात बालक होंगे एवं ये सातों बालक लाखों करोड़ों जीवों को वैष्णव बनायेंगे। हम सब जानते है कि आपकी वाणी सत्य निकली।

पिता का अपने पुत्र पर विश्वास का एक और उदाहरण देना चाहता हूं। श्रीमहाप्रभुजी श्रीठाकुरजी की आज्ञा पर लीला में बहुत जल्दी पधार गये थे। श्रीमहाप्रभुजी

श्रीठाकुरजी से कभी भी अपनी अधिक उम्र की कामना नहीं करते थे पर दामोदरदास हरसानी के लिये लम्बी उम्र की विनती करते थे। एक बार दमला ने पूछा प्रभु आप मेरी लम्बी उम्र की विनती क्यों करते हैं। तब आप श्री ने कहा मुझे ठाकुरजी की आज्ञा है कि उनके पास जल्दी जाना है। दोनों बालक श्रीगोपीनाथजी एवं श्रीविट्ठलनाथजी छोटे हैं। तुम्हे उन्हे मेरे पश्चात् सेवा की रिती एवं संस्कार सिखाने हैं। आप श्री के लीला में पधारने के पश्चात दमला ने ही उन दोनों बालकों को पुष्टिमार्ग की रिती एवं ठाकुरजी की सेवा सिखाई। श्रीगुसाईंजी दमला को अपने पिता श्री के तुल्य ही मानते थे एवं उन्हें प्रणाम करते थे। आप सब जानते हैं कि श्रीमहाप्रभुजी एकान्त में दमला को दर्शन देते थे एवं उसका मार्गदर्शन करते थे। एक बार महाप्रभुजी ने दमला को कहा कि तुम श्रीगुसाईंजी को दण्डोत क्यों नहीं करते हो। आज से तुम उनमें मेरे स्वरूप को जानकर दण्डोत किया करना। श्रीमहाप्रभुजी को श्रीगुसाईंजी पर पूर्ण विश्वास और भरोसा था।

श्रीविट्ठलनाथजी ने पुत्र के नाते उनके विश्वास और भरोसे को प्रमाणित ही नहीं किया अपितु ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जो अन्य कहीं देखने को नहीं मिलते हैं। आप श्री के चरित्र में पिता के प्रति प्रगाढ़ विश्वास एवं श्रद्धा देखने को मिलती है जो इतिहास एवं वर्तमान में देखने को नही मिलती है।

सर्वप्रथम में यहां बंगाली को सेवा से निकालने बाबत चर्चा करना चाहता हूं। श्रीठाकुरजी को अपना वैभव बढ़ाना था। अतः आपश्री ने श्रीकृष्णदास अधिकारी को आज्ञा की कि इन बंगाली सेवकों को मेरी सेवा से निकालो क्योंकि ये भोग धरते समय मेरे पास मां देवी की मूर्ति रख देते हैं। अतः यह मुझे अच्छा नहीं लगता है एवं मैं भोग अरोगता नहीं हूं। दूसरी जो भी भेंट आदि आती है यह अपने गुरू के पास पहुंचा देते हैं। कृष्णदास को ठाकुरजी ने कई बार ऐसी आज्ञा की। कृष्णदास ने श्रीगुसाईंजी से इस बाबत कईं बार विनती की पर हर बार गुसाईंजी का जवाब होता यह मेरे पिताश्री के द्वारा रखे गये हैं एवं इनका ब्रह्म सम्बन्ध पिताश्री द्वारा हुआ है। अतः मैं उन्हें सेवा से कैसे अलग कर सकता हूं। देखिए पिता के प्रति सम्मान एवं आदर आपके मन में कितना था। एक बार गुसाईंजी अडेल बिराज रहे थे। श्रीठाकुरजी ने फिर कृष्णदास को आज्ञा की कि बंगालियों को मेरी सेवा से निकालो। मुझे बहुत कष्ट एवं श्रम हो रहा है। आगे का प्रसंग हम सब जानते हैं कि श्रीकृष्णदास ने अडेल जाकर हाकिम के नाम श्रीगुसाईंजी से दो पत्र लिखवाये एवं कृष्णदास ने बंगाली सेवकों के घर जलाकर उन्हें सेवा से अलग किया।

दूसरा उदाहरण मैं श्रीगुसाईंजी का 6 महिने तक पारसोली में रहना और मंदिर नहीं पधारने का देना चाहता हूं। श्रीकृष्णदास की आसक्ति गंगाबाई पर थी एवं उसे मंदिर में आने जाने की इजाजत श्रीकृष्णदास ने दे रखी थी। ठाकुरजी ने श्रीगुसाईंजी से कहा गंगाबाई की दृष्टि रोज मेरे राजभोग पर पड़ती है जो मुझे अच्छी नहीं लगती है। श्रीगुसाईंजी ने कृष्णदास को कहा कि गंगाबाई को कहो कि ठाकुरजी क्या चाहते हैं। श्रीकृष्णदास ने श्रीगुसाईंजी को 6 महिने तक मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया। हम सब जानते हैं कि श्रीगिरधरजी के कहने पर हाकिम कृष्णदास को पकड़ कर मथुरा ले गया एवं जैल में डाल दिया। यह बात श्रीगुसाईंजी को पारसोली में ज्ञात हुई। उन्होंने अन्न जल का त्याग कर दिया और गिरधरजी से कहा यह तुमने अच्छा नहीं किया। श्रीकृष्णदास श्रीपिताजी के सेवक एवं सखा हैं एवं पिताश्री ने ही उन्हें अधिकारी बनाया है। जब तक वो नहीं आयेंगे मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगा। श्रीगिरधरजी से मथुरा जाकर कृष्णदास को छुड़ाकर लाये तब आपश्री ने अन्न जल ग्रहण किया। कृष्णदास ने आपको दण्डोत की एवं क्षमा मांगी और आपको मंदिर में जाने की इजाजत दी। श्रीगुसाईंजी चाहते तो प्रथम दिन ही कृष्णदास को सेवा से निकाल सकते थे। पर आप श्रीअपने पिताश्री की कही गयी बात और उनके कार्यो को पत्थर की लकीर मानते थे एवं सम्मान करते थे। श्रीगुसांईजी ने कृष्णदास को मन्दिर का प्रथम अधिकारी बनाया एवं अधिकार करने की आज्ञा दी।

श्रीठाकुरजी ने महाप्रभुजी से कहा था कि जिसे आप ब्रह्म सम्बन्ध देंगे एवं मेरे हाथ में सौंपेंगे उसको मैं कभी नहीं छोडूंगा। एक बार मथुरादास वैष्णव ने श्रीगुसाईंजी से पूछा कि आपकी दृष्टि में और श्रीमहाप्रभुजी की दृष्टि में कितना अंतर है तब श्रीगुसाईंजी ने आज्ञा कि की हमने तुम्हारा त्याग किया। सभी वैष्णवों ने जाना कि श्रीगुसाईंजी ने मथुरादास का त्याग कर दिया है अतः उसे भगवत् चर्चा नहीं करते एवं उसके पास नहीं बैठते। मथुरादास ने इसे अपमान के रूप में लिया एवं आपघात करने का सोचा। उसने अन्न जल का त्याग कर दिया एवं जंगल की ओर आपघात करने चला। रास्ते में एक सेवक डोकरी जमनाबाई रहती थी। मथुरादास ने सोचा जमनाबाई को मेरे त्याग की खबर नहीं होगी अतः अन्तिम समय इसके साथ सत्संग करता जांउ। मथुरादास ने उसके साथ सत्संग कर बहुत आनन्द पाया। जमनाबाई ने मथुरादास को प्रसाद लेने को कहा तो मथुरादास ने कहा–मुझे गुसाईंजी ने त्याग दिया है एवं मैने अन्न जल छोड़कर आपघात करने का निर्णय किया है। श्रीठाकुरजी ने अपने वचनों को

झूठा नहीं होने देने एवं श्रीमहाप्रभुजी के शरण लेने के पश्चात् वैष्णव का ऐसा हाल कैसे होने देते। श्रीगुसाईंजी भी त्याग करने के बाद दुःखी थे। जमनाबाई ने कहा मथुरादास तुम पागल हो। श्रीगुसाईंजी किसी का त्याग नहीं करते हैं। श्रीठाकुरजी ने श्रीमहाप्रभुजी को ऐसा वचन दिया है कि जिनको तुम ब्रह्म सम्बन्ध दोगे उनको हम त्यागेंगे नहीं और उनके कोई दोष नहीं रहेंगे। सिद्धान्त रहस्य ग्रंथ में कहा है—

ब्रह्म संबंध करणात् सर्वेषां देह जीवयोः।
सर्व दोषानिवृतिर्हि दोषाः पंच विधाः स्मृताः।।

और अंतःकरण प्रबोध में कहा है—

सत्यसंकल्पो विष्णुनीन्यथा तु करिष्यति
अन्यश्च लौकिक प्रभु वत्कृष्णों न दुष्टव्यः कदाचन

श्रीमहाप्रभुजी ने निबंध में कहा है जो हमारे मार्ग में आयेंगे और अधर्म करेंगे तथा वेद निंदा करेंगे वे नरक में नहीं जायेंगे और हीन योनि में जन्म लेंगे।

अत्रापि वेद्निन्दायाम धर्मकरणास्तथा।
नरकेन भवे त्यातः किन्तु हीनेषु जायते।।

और श्रीठाकुरजी ने श्रीगीता में कहा है कि

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अतः श्रीगुसाईंजी तेरा त्याग कैसे कर सकते हैं। जमनाबाई ने मथुरादास को महाप्रसाद लेवाया और उनको साथ लेकर श्रीगुसाईंजी के पास आई तब मथुरादास को देखकर श्रीगुसाईंजी ने पूछा तुम चार दिन से कहाँ गये थे? श्रीगुसाईंजी ने जमनाबाई की बात सच करने एवं अपने पिताश्री के वचनों को सत्य करने के लिए, मार्ग की स्थिरता रखने के लिए और सृष्टि का तारतम्य बताने के लिए मथुरादास को ऐसी लीला दिखाई थी। मेरे कहने का अर्थ है कि श्रीगुसाईंजी ने जीवन भर अपने पिता के दिए गए आदेशों एवं कार्यों को पलटा नहीं। परन्तु उसे आगे बढ़ाया एवं पुत्र होने के कर्तव्य को निभाया जो अद्वितीय है। मैं यहां एक अन्तिम उदाहरण देना चाहता हूं जो सर्वोत्तम स्तोत्र से है— हम जानते हैं कि सर्वोत्तम स्तोत्र की रचना श्रीगुसाईंजी ने की है । श्रीगुसाईंजी ने यहां साहस करके कहा कि श्रीवल्लभाधीशजी द्वारा दिया गया निर्देशन भी लोगों की समझ में नहीं आयेगा अतः मैं आपश्री के 108 नामों की वन्दना कर रहा हूं। यह पिता के प्रति चरम आसक्ति का उदाहरण है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

# दानलीला का महत्व

—श्री रविराज ईश्वरचन्द्र सनाढ्य

श्री वल्लभ द्वारा प्रणीत पुष्टिमार्ग बहुत ही अद्भुत और रहस्यमय है। इस मार्ग में श्री गोवर्धनधरण लाड़ले श्रीनाथजी की कई बाल लीलाओं के दर्शन होते हैं जैसे :— माखन चोरी, गोचारण लीला, चीरहरण लीला, मानमर्दन लीला, गिरिराजधारण लीला आदि। उन्हीं में प्रसिद्ध लीला दानलीला भी है। प्रभु श्याम सुन्दर की प्रत्येक लीला का कोई कारण तो होता ही है। दानलीला का भी एक महत्वपूर्ण कारण है जैसे मकान निर्माण से पूर्व उसकी नींव रखी जाती है। उसी प्रकार प्रभु ने सबसे महत्वपूर्ण लीला और पुष्टिमार्ग की नींव के रूप में रासलीला करी। उसकी नींव के रूप में दान लीला करी। एक समय लालन ने माता यशोदा से राजा जैसा श्रृंगार धराने की जिद् करी। नही मानने पर माता यशोदा ने लालन को मुकुट काछनी धरा राजा बना दिया और ग्वाल बालों ने जब लाला को इस अद्भुत श्रृंगार में पहली बार देखा तो कहने लगे अरे राजा आज तो यह क्या पहन लिया। तब सखाओं से कहा अरे मित्रों मैं आज राजा बना हूँ। तब सखा बोले राजा तो कंस है जो बहुत बुरा है हमारे ब्रज का सारा गोरस कर (टेक्स) के रूप में मथुरा मंगा लेता हैं। तब लालन बोले अब आज से ब्रज का राजा मैं हूँ और गोरस कर के रूप में हम गोपियों से लिया करेंगे। चलो खोर साकरी चलते हैं क्योंकि सारी गोपियाँ उधर से ही मथुरा की तरफ जाती हैं। तब ग्वालों ने कहा अगर उन्होंने राह बदल दी तो हमे तो वैसे भी कोई कर के रूप में गोरस नहीं देगा। तब प्रभु बोले कर नहीं तो दान के रूप में मांग करेंगे। जिस दिन श्याम सुन्दर ने पहली बार दान माँगा वह एकादशी का दिन था। तब से वह दान—एकादशी के रूप में जाने जानी लगी। लेकिन गोपियों ने उस दिन प्रभु को दान नहीं दिया और जब प्रभु ने उनसे छीनने की कोशिश करी तो किसी गोपी ने प्रभु की चोटी खिंच दी तो किसी ने मुकुट मोड़ तोड़ दिया तब प्रभु फिर से एकम से दान मांगने लगे लेकिन प्रभु ने चोटी का जूड़ा बना लिया और मुकुट को भी वस्त्र से बांध लिया। इसीलिये दान के दिनों में प्रभु को चोटी नहीं आती और मुकुट पर चीरा धराया जाता है। दानलीला में कोई तो प्रभु को प्रेम से गोरस देता और जो नहीं देता प्रभु उससे **Tax** के रूप में जबरदस्ती ले लिया करते। जो प्रेम से देते उनका भाव सूरदासजी के इस पद में देखने को मिलता है.......

"सखिरी! ब्रज को वसवो नीको।
बछरा जात चरावत् वन में, कान्ह सबन को टीको।।१।।
वृंदावन में होत कुलाहल, गरजत सुर मुरली को।
ठाड़े लाल कदंब की छैया, माँगत दान दही को।।२।।
उपजत प्रीत अति उर अंतर, जस गावत हरिजू को।
'सूरदास' प्रभु मिल ही गिरधर, जीवन सबही को।।३।।

दिन के समय तो गोपियों को दान लीला के रूप में प्रभु का संग मिलता था। लेकिन जब संध्या के समय में गोपियों को प्रभु से वियोग सहन नही होता था तब वही गोपियाँ अपने घरों के अंदर रंग–बिरंगे फूलों से उन्हीं पलों को अपने श्याम सुन्दर के साथ बिती यादों को उकेरती थी और अपने प्राण–जीवन को अपने निकट अनुभव करती थी। इसी भाव से मन्दिर में साँझी की सेवाऐं श्रीजी को धराई जाती है तथा 16 दिन की दानलीला की सांझी के दर्शन करने से 84 कोस ब्रजयात्रा का पुण्य फल प्राप्त होता है।

अब आगे की लीला देखिये जिसमें महादान का वर्णन है। इसमें प्रभु ने अपनी प्राणेश्वरी (राधा) से भी दान मांगा और यह भी एकादशी को ही लीला करी। इसलिये इसे महादान लीला का नाम मिला। देखिये परम वैष्णव माधोदासजी की दानलीला में। जब दान बिहारी अपनी रासेश्वरी से दान के रूप में गोरस को मांगते हैं और किशोरीजी देने से इनकार करती है तो जो जो वाद प्रतिवाद उनके बीच होता है उसी का वर्णन इसमें है :–

राधाजी कहती है :–

"हमारो गोरस दान न होय! मोहन लाड़िले।।"

तब श्रीश्याम सुन्दर कहते है :–

"हमारे उन्मुद् फिरत् ग्वाल। नारी हठ छाँड़ देत।।"

श्रीराधा :– कब के तुम दानी भये, कब हम दीनो दान।
गैया चरावो तुम नंद की, हम सुने अनोखे कान।।" मोहन लाड़ले

प्रभु :– "हो दानी तिहूँ लोक को, तुम चारो जूग की गमार।
दान न छाँड़े हम आपनो, तेरो राखो गहने हार।।" नारी हठ छाँड़ दे

श्रीराधा :– "रतन जटित की इन्डुरी मेरी, हीरा जड्यो हार।
ताही तुम राखन चाहो, कमरी के ओढ़न हार।।" मोहन लाड़ले

प्रभु :– "ब्रह्मा तानो पुरीयो, बुनी बैठ महेश।
सो ओढ़े हम कामरी, ताको पारन पावे शेष।।" नारी हठ छाँड़ दे

श्रीराधा :– "नैनन चावत चातुरी, बोलत मधुरे बोल।
मेरो हार किरोर को, तेरी सब गैयन को मोल।।" मोहन लाड़ले

प्रभु :– "ऐ गैया तिहूँ लोक तारिणी, सब विध पूरे काम।
दूध दही तिहूँ लोक को, तेरो हार लेहो दस दाम।।" नारी हठ छाँड़ दे

श्रीराधा :– "काहे को वाद करत हो लाला, काहे करत अतिशोर।
जैसे बाजे तेरी बाँसुरी, मेरे नुपूर की घनघोर।।" मोहन लाड़ले

प्रभु :— या बंशी की फूँक पे, मैने गिरवर लियो है उठाय।
ढीठ बहोत यह ग्वालीनी, याकी मटकी लेहो छिनाय।।" नारी हठ छाँड़ दे

श्रीराधा :— "यशोदा बाँधे दामरी, दामोदर श्रीगोपाल।
हाँ—हाँ कर पायन परे, तब हमही छुड़ाये लाल।।" मोहन लाड़िले।

प्रभु :— "जीभ करत कित ग्वालीनी, यमुना तीर जू नहात्।
चीर हरे हम नीरपे, तब इत, उत, फेरत हाथ।।" नारी हठ छाँड़ दे।

श्रीराधा :— "मोर पखोवा सिर धरे, बाँस फूकनी फैंट।
गले गुंजन को हार बिराजत, या श्रृंगार पर ऐंठ।।" मोहन लाड़लें

प्रभु :— ए सब पंछी मुनी है, जिन तप साध्यो विश्वास।
ते मोहे निमिष न बिसरे, मेरे जीवन प्राण।। नारी हठ छाँड़ दे।

श्रीराधा :— "हम बेटी वृषभान की, तुम नंद महर के लाल।
प्रेम प्रीत रूचि मानले ढ़ोटा, अब जिय करे गुमान।।" मोहन लाड़लें

प्रभु :— "वृंदावन क्रीड़ा करी, रच्यो रास विलास।
सुर नर मुनी जै जै करे, जनम गावे माधोदास।।"

श्रीहरिराय महाप्रभुजी ने इसका भावार्थ किया है कि प्रभु ने श्री किशोरीजी से गोरस माँगा जबकि सखियों से तो दूध दही की मांग की। लेकिन श्री किशोरीजी समझ गये कि श्याम सुंदर गोरस के पीछे जो हमारे प्रेम रस को मांग रहे हैं तो थोड़ी छेड़कानी करनी चाहिये और तभी स्वामीनीजी कहती है 'हमारे गोरस दान न होय"। क्योकि अभी अगर प्रभु की बात मानली तो प्रभु 'रासलीला' संभवतः न करे। लेकिन वाद प्रतिवाद से जब प्रभु श्री राधाजी का संसय समझ गये और अंत में विश्वास दिलाते हुऐ कहा "वृंदावन में रास लीला भी होगी।" तब स्वामीनीजी ने प्रेम रस, और गोरस दोनों का ही दान प्रभु को किया। इस दान के बदले प्रभु ने सब ब्रज गोपियों को अपने लीलारस का दान रासलीला के रूप में आनंद लुटाकर पूरा किया। इसी कारण से इस लीला को पुष्टिमार्ग में दानलीला के नाम से जाना जाता है। प्रभु विषय में इससे अधिक कहने की, ना मेरी सामर्थ्य है और नाही हैसियत। कृपानाथ की कृपा से जो भाव मेरे ह्वदय में उत्पन्न हुए उन्हें टूटे फूटे शब्दों में देन्यभाव से कहने का प्रयास मात्र किया है।

।। जय श्रीकृष्ण।।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग के वैष्णव वृन्द को महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत एवं पुष्टिमार्गीय सेवा–पद्धति से परिचित कराने के साथ ही सेव्य प्रभु श्रीनाथजी जो श्रीकृष्ण के साक्षात् बालस्वरुप है, के प्रति स्नेह, सेवा एवं समर्पण भाव की अभिवृद्धि के लिए मन्दिर मण्डल विगत दस वर्षों से **"पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका"** का निरन्तर प्रकाशन करता आ रहा है। वैष्णवों से आग्रह है कि पुष्टिमार्ग–पत्रिका के सदस्य अवश्य बनें और पुष्टिभाव प्रसारार्थ अन्य लोगों को भी अवश्य सदस्य बनावें। इस हेतु कृपया सदस्यता फार्म भर कर शीघ्र भिजावें।

---

# सदस्यता फार्म

## पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका

प्रकाशक :– मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा मन्दिर मण्डल नाथद्वारा, पिन कोड– 313301

फोन : 02953–232482, फेक्स : 02953–232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>

ICICI Bank A/C No. 004501014021 बड़ौदा बैंक A/C No. 10300100000318

www.shreenathjee.com www. nathdwara. in

| सदस्यता शुल्क | वार्षिक | पांच वर्षिय | आजीवन |
|---|---|---|---|
| भारत में | Rs. 60 | Rs. 300 | Rs. 800 |
| विदेशों में | US$ 12 | US$ 60 | US$ 160 |

---

मुख्य निष्पादन अधिकारी

मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा, पिन– 313301

मैं/मैसर्स पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका की वार्षिक/पांच वर्षिय/आजीवन सदस्यता माह———————वर्ष————————— से लेना चाहता/चाहती हूं। इस हेतु राशि———————————————— का एम. ओ./एम. टी./डी. डी. नं.———— (नाथद्वारा में देय) संलग्न कर प्रेषित है। (कृपया एम. ओ./एम. टी./डी. डी./या ICICI /BOB बैंक खाते में जमा कराई राशि संग "पुष्टिमार्ग पत्रिका हेतु" का उल्लेख कर स्लिप भिजावें)।

(डी.डी., बैंक चैक आदि मुख्य निष्पादन अधिकारी, मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के नाम बनवावें।)

आवेदक के हस्ताक्षर

आवेदक का नाम——————————————————————

पता——————————————————————

जिला————————— राज्य——————— पिन कोड————

फोन————————— ई–मेल—————————

---

पत्र, आलेख एवं सदस्यता भिजाने हेतु पता–

संपादक :–पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका,

(दयाशंकर पालीवाल, पुष्टि प्रसार अधिकारी, 09829755702)

लोधाघाटी, नाथद्वारा पिन–313301, जिला– राजसमन्द, (राज.)

Shrinathji Temple Board, Nathdwara has been publishing "Pushti Marg" Quarterly Magazine for last ten years to propagate and expand the, philosophical Doctrine of Shudhadwet and system of Pushti Marg sect propounded by Maha prabhu Shrimad Vallabhacharyaji.

All the devoted Vaishnavas are beseeched to be the members of and serve the Pushti Marg by making others to do the same.

---

## PUSTIMARG QUARTERLY MAGAZINE

**Publisher :- Chief Executive Officer, Temple Board, Nathdwara-Pin-313301**

**Phone : 02953-232482, Fax-02953-232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>**

ICICI Bank A/C No. 004501014021 Bank of Baroda A/C No. 10300100000318

www.shreenathjee.com www. nathdwara. in

| Member ship Fee | Annual | Five Years | Life time |
|---|---|---|---|
| India | Rs. 60 | Rs. 300 | Rs. 800 |
| Abroad | US$ 12 | US$ 60 | US$ 160 |

---

**Chief Executive Officer**

**Temple Board Nathdwara-313301**

I/Messers want to be the member of Pushti Marg Quarterly Magazine for one/Five Years/Life time from the month...............year. For this M.O./M.T./D.D. (Payable at Nathdwara) No. .................... is enclosed here with. (please endorse the referance "For Pushtimarg Patrika" while sending M.O./M.T./D.D./ or ICICI/BOB Bank slip.)

(D.D./Bank Order Should be on the name of C.E.O. Temple Board. Nathdwara)

Signature of the Applicant

Name of the Applicant....................................................................

Adress....................................................................

....................................................................

District.............................State......................Pin.............

Phone...............................E-mail.....................................

---

**Adress for Sending letters, Articals and Member ship:-**

**EDITOR :- Pushti Marg Quarterly Magazine**

(D. S. Paliwal, Pusti Extension Officer, 09829755702)

Lodha Ghati, NATHDWARA, Dist. Rajsamand, Rajasthan. Pin-313301